। [श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली [खण्ड छठा

श्री

स्वामी रामतीर्थ

उनके सदुपदेश–भाग २४ ।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ ।

प्रथम संस्करण } प्रति २००० —:※:— { दिसम्बर १९२३ मार्गशीर्ष १९८०

वार्षिक मूल्य के हिसाब से

फुटकर

सादी ॥=) } डाक व्यय अलग } सजिल्द ॥।=)

दैवी प्रकृति, जो कि वास्तव में हमारी है, उसमें हम तनिक
ध्यान नहीं देते।
हम ने अपने हृदय निकृष्ट वर समझ कर (संसार को)
दे दिये हैं ;
यह समुद्र जिस ने अपना वक्ष-स्थल चन्द्रमा के सम्मुख
खोल कर रख दिया है।
पवन जो स्वभाव से ही हर घड़ी गरजती (सनसनाती)
रहती है;
और जो अब सोते हुए (बंद) पुष्पों के समान शान्त है ;
इस (दृश्य) के लिये और प्रत्येक वस्तु के लिये हम
बेसुरे (प्रतिकूल) रहते हैं।
यह (दृश्य) हम पर कुछ प्रभाव नहीं डालता, हे परमा-
त्मिन्! इस से तो मैं
जीर्णमतावलम्वी मूर्तिपूजक (pagan) होता।
इस प्रकार मैं इस रमणीय समुद्र-तट पर खड़े होकर,
ऐसे दृश्य देखूं
कि जिस से मुझे मेरी आत्म-स्मृति कम न हो।
सागर से समुद्र-देवता को उठते हुए देखूं,
और उस वृद्ध देवता (Triton) को अपनी सुसज्जित
शृंगी नाद करते सुनूं।

(वर्डसवर्थ)

अमेरिका और युरोप के नाम मात्र के उन्नत राष्ट्र केवल अपकर्ष वा दुःख की बढ़ी चढ़ी अवस्थाओं में हैं। आध्यात्मिक तथा मानसिक उन्नति ही उन्नति का अर्थ है। वास्तविक उन्नति असली मनुष्य पर अवश्य प्रभाव डालती है, केवल मनुष्य की छाया पर ही अपने आप को नष्ट होने नहीं देती। सांसारिक सम्पत्ति वा अनावश्यक ज़रूरतों की वृद्धि

विषय सूची ।

विषय

विशेष सूचना

इस २४ वें भाग से श्री रामतीर्थ ग्रन्था-
ला के चौथे वर्ष का चन्दा समाप्त हो जाता
२५ वां भाग स्थायी ग्राहकों की सेवा में
वी. पी. द्वारा भेजना होगा। आशा है
सब राम-प्यारे उस वी. पी. को स्वीकार
लीग की सहर्ष सहायता करेंगे। यह
भाग जनवरी मास के अन्त में निकल
। तब तक जो सज्जन किसी कारण
थावली के स्थायी ग्राहक आगे बने
हीं चाहते वे कृपया मुझे शीघ्र सूचना
भेज दें जिस से वी पी उन की सेवा में न
भेजा जाय और व्यर्थ लीग को हानि न
पहुंचने पाय।

मैनेजर

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग

गणेशगंज, लखनऊ

निवेदन ।

ईश्वर का धन्यवाद है कि लीग आज २४ वां भाग समय के भीतर २ छपा कर अपने ग्राहकों की सेवा में भेज सकी है। इस वर्ष का प्रथम भाग अर्थात १९ वां भाग जनवरी मास में आप की सेवा में भेजा गया था और इसी का अन्तिम (२४ वां) भाग दिसम्बर के अन्दर २ भेज कर हम अपने स्थायी ग्राहकों का भी धन्यवाद करते हैं कि उनकी शुभ भावना, कृपा व निरन्तर उत्साह भरी सहायता से हम अपनी प्रतिज्ञानुसार उन की सेवा कर सके हैं। यदि ईश्वर की और आप स्थायी ग्राहकों की निरन्तर कृपा और सहायता बनी रही, तो भविष्यमें भी लीग को आप लोगों की दिलभर सेवा करने की पूर्ण आशा है। ईश्वर करे, सब के हृदय राम-प्रेम से निमग्न हों और सब परस्पर मिलकर लीग के उद्देश्यों की पूर्ति में यथाशक्ति सहायता देकर हम लोगों को कृत कार्य करें।

अब पचीसवां भाग मास जनवरी के अन्त में प्रकाशि[illegible] हो सकेगा जो ग्राहकों की सेवा में वी पी से भेजा जायगा क्योंकि २५ वां भाग लीग के पाँचवें वर्ष का प्रथम भाग होगा आशा है कि सब राम प्यारे पाँचवे वर्ष का अपना वार्षिक शुल्क देकर इस वी. पी. को सहर्ष स्वीकार करेंगे।

भवदीय

मंत्री

श्री स्वामी रामतीर्थ।
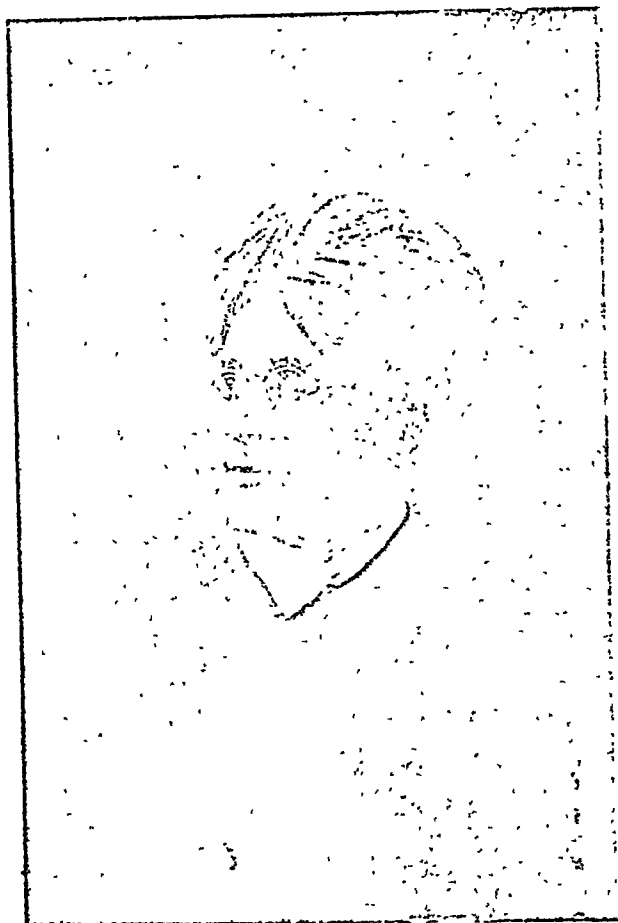
अमेरिका—सन १९०३

स्वामी रामतीर्थ।

❀ अरण्य-सम्वाद ❀

संख्या (१)

सभ्यता।

सनोवर तथा देवदार वृक्षों के तले लेटे हुये, जहाँ एक ठण्डा पत्थर तकिये और नर्म बालू बिछौने का काम देती थी, एक पाँव दूसरे पर निश्चिन्त रूप से रक्खे हुए, ताज़ी हवा खुले दिल से पान करते हुए, पूर्णानन्द के साथ उज्ज्वल प्रकाश चूमते हुए, ॐ अर्थात् प्रणव उच्चारण करते हुए, और कल कल करने वाले सोते को सुर मिलाने का अवसर देते हुए **राम** से किसी दर्शक ने, कुछ हँसी में, पूछा, जो कि सभ्यता में अभी नया २ प्रविष्ठ हुआ था।

"आप एशियाई अकर्मण्यता (आलस्य) अमरीका में

क्यों लाते हैं ? बाहर जाइये और कुछ भलाई कीजिये ।"

राम—ऐ मेरे प्यारे आत्मस्वरूप ! भलाई करने के विषय में पूछो, तो क्या यह कार्य पहले ही से अत्यन्त अधिक और गले पूर्ण नहीं है ? मुझे और मेरे राम को अकेला छोड़ दो।

तुम ने क्या कहा ? अकर्मण्यता, पूर्वीय अकर्मण्यता ? क्यों ? अकर्मण्यता है क्या ?

क्या लोकाचार के दलदल में फँसे रहना और अपने आप को रीति रवाज की धारा में बहने देना, एक निर्जीव बोझे की नाईं नाम रूप के कुवें में डूब जाना, सम्पत्ति के गड्ढे में फंसे रहना, और समय को, जो कि ईश्वर की वस्तु होनी चाहिये, रुपया पैदा करने में लगाना, और फिर भी इसे 'भलाई करना' कहना अकर्मण्यता नहीं है ? क्या दूसरों को अपने समान जीवन व्यतीत करने देना और वस्त्र, भोजन, चलने, सोने, हँसने और रोने तथा वार्तालाप करने में तो कहना ही क्या, इन समस्त दशाओं में स्वतन्त्रता न रखना, अकर्मण्यता नहीं है ? क्या अपना ईश्वरत्व खो देना अकर्मण्यता नहीं है ? यह शीघ्रता और परेशानी, यह सरतोड़ सरगर्मी और ज्वर की जैसी धकापेल (feverish rush) किस लिये है ? दूसरों की नाईं सर्व शक्तिमान रुपए (डालर) को इकट्ठा करने के लिये, और फिर क्या ? दूसरों की नाईं आनन्द मनाने के लिये ? नहीं, क्योंकि आनन्द के पीछे भागने में आनन्द नहीं होता। ऐ सांसारिक सम्मतियों के बुद्धू प्यारों ! तुम अपने आनन्द मनाने को फिर पर क्यों टालते हो ? यहां इस सुन्दर पहाड़ी नदी के तट पर की प्राकृतिक वाटिका में, तुम क्यों नहीं बैठते और अपने वास्तविक सग सम्बन्धियों (blood relations) की संगति का आनन्द क्यों नहीं उठाते ? ये स्वतन्त्र वायु, रजत चन्द्रमा, कीड़ा

करता हुआ जल, और हरित भूमि इत्यादि ऐसे सम्बन्धी हैं कि जिनसे वास्तव में तुम्हारा रक्त बना हुआ है। सभ्य राष्ट्र भी चर्म-दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था में बँधे हुए हैं। वे अपने आप को अपने स्वजनों से पृथक कर लेते हैं और स्वतन्त्र तथा विशाल प्राकृतिक दृश्य और सुन्दर, ताज़े, प्राकृतिक जीवन से अपने को दूर कर, बन्द सुसज्जित कमरों व कोठरियों अर्थात् अन्ध गृहों में वास करते हैं। वे अपने आप को विशाल विश्व से बाहर निकाले रखते हैं, और समस्त चराचर जगत से बहिष्कृत तथा वृक्षों और पशुओं से दूर हुए रहते हैं। अपनी श्रेष्ठता, चिर प्रतिष्ठित गौरव (prestige), मान, सम्मान, आदर आदि का घमण्ड रखते हुए अपने आप को एक तंग घेरे में अलग कर लेते हैं। मेरे मित्रो! दया करो, अपने ऊपर दया करो।

वह धन, जो कि ग़रीब दीनों के अधिकार से स्वरचित चालाकी के साथ छीन कर तुम्हारी सम्पत्ति में जोड़ दिया गया है, वह तुम्हें केवल भोजन-भण्डारों (Hotels) और शराबखानों के रोग वर्द्धक भोजनों के योग्य बना देगा, तुम्हें तेजहीन, पीली मुख-आकृति तथा लौकिक दृष्टि प्रदान करेगा, तुम्हें बाहरी दिखावे की दुर्गन्ध से युक्त कमरों अर्थात् संदूक़ों में बंद कर रक्खेगा, और सर्वदा चित्त को ऐसी अशान्ति में फँसाये रक्खेगा कि जो नाना प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक अस्वाभाविक उत्तेजनाओं (Stimulants) से उत्तेजित होती है। अपने आप ही को भ्रम में डालने के लिये यह सब आडम्बर क्यों है? ऐसे कल्पित आनन्दों के नाम मात्र से ही असली परमानन्द पर से अपना अधिकार न खो बैठो; इधर उधर भटकने की कोई आवश्यकता नहीं। आओ, 'अब' और यहाँ' (इस वर्तमान जन्म) का आनन्द

उठाओ। आओ, मेरे साथ घास पर लेटो।

अपने जीवन का वीमा कराने को लक्ष्मी का अनुग्रह प्राप्त करने में अपना जीवन नष्ट मत करो। क्या तुम्हारे जीवन का वीमा (रक्षण) धनाढ्य होने तथा समय पर रुपया दे देने से ही हो सकता है? ऐ मूढ़ अविनाशी स्वरूप! तू ऐसा विश्वास मत कर। अपने अस्तित्व के लिये तू सुस्वादु क्षुद्र वस्तुओं के पाने की दौड़ धूप में क्यों व्यर्थ वहाने खोजता फिरता है।

The world is much with us; late and soon,
Getting and spending, we lay waste our powers:
Little we see in Nature that is ours;
We have given our hearts away, a sordid boon;
This sea that bears her bosom to the moon;
The winds that would be howling at all hours;
And are up gathered now like sleeping flowers;
For this, for every thing we are out of tune;
It moves us not—Great God! I'd rather be
A pagan suckled in a creed outworn!
So might I, standing on this pleasant lea,
Have glimpses that would make me less forlorn,
Have sight of Proteus rising from the sea;
Or hear old Triton blow his wreathed horn.

(Wordsworth)

अर्थः—

संसार हम पर बहुत प्रबल है। बहुत शीघ्र या देर में
हम अपनी शक्तियों को कमाने खाने में ही नष्ट करदेते हैं।

करते जाना उन्नति से कोई प्रयोजन नहीं रखता। प्राचीन आर्य्य लोग वृहद् ग्रन्थ लिखकर, शुद्ध तथा स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करके, संसार में किसी वस्तु पर अपना अधिकार न जमाते हुए, एक ऐसे प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे कि जो पुनः इतिहास में उचित परिवर्तन के साथ दुहराए जाने योग्य है। आधुनिक सभ्यता अपने अन्तिम ध्येय के मार्ग में पदचिह्न मात्र (side-tracks) है। मनुष्य के विषय ठीक उसी प्रकार बात चीत की जाती है जैसे अनाज वा गेहूं के सम्बन्ध में कहते हैं, कि मूल्य बढ़ रहा है या घट रहा है। इससे ऊपर उठो। कोई वस्तु तुम्हारा मूल्य नहीं लगा सकती।

दिखावे के प्रिय भक्तो! तुम्हें आर्य्य पुरुषों के संन्यास वा त्याग का आदर्श आलस्यमय स्वप्न सा जचता है। कृपया सावधान हो। किस भयानक स्वप्न में तुम आसक्त हो, इसका अनुभव कराने और तुम्हें हिला कर उस से जगाने का उचित समय अब आ गया है। प्रेम द्वारा त्याग से विहीन सभ्य मनुष्य एक अधिक अभ्यासी वा बहुदर्शी और चालाक जङ्गली मनुष्य ही है।

सभ्य संसार के धन-मद, लोकाचार, दिखावे और चमक दमक पर मुग्ध मत हो! ये सब असफल सिद्ध हो चुके हैं। इन की अग्नि-परीक्षा की गई, परन्तु वे काष्ट, शुष्क घास तथा चारे के समान ही निस्सार सिद्ध हुए। आधी जन-संख्या तो भूखों मर रही है, किन्तु बाकी आधी स्पष्ट फ़ज़ूल खर्ची, अनावश्यक सामानों, सुगंध की बोतलों, मिथ्या गौरव वा आडम्बरों, बनावटी व्यवहारों, नाना प्रकार के अमूल्य किन्तु तुच्छ पदार्थों, निकृष्ट सम्पत्तियों और अस्वास्थ्यकर दिखावे (unhealthy show) के बोझ के तले दब रही है।

न तो मानसिक और न ही शारीरिक परिश्रम स्वास्थ्य

और दीर्घायु के विरोधी वा असंगत है, सिवा इस के कि एक की स्थिरता दूसरे के नाश पर निर्भर है। परन्तु आज कल संसार में कछु मनुष्य तो शारीरिक श्रम पर ही जीवित (वल्कि मर रहे) हैं, और अन्य लोग मानसिक उधेड़बुन (मस्तिष्क सम्बन्धी श्रम) की आसक्ति से ही नष्ट हो रहे हैं। यह ऐसा है जैसे कि कुटुम्ब के कुछ लोगों में तो सूखी रोटी और कुछ में केवल मक्खन (या चटनी इत्यादि) का बँट जाना।

इस विश्व में आत्म-निन्दित लोग वे हैं जो किसी वस्तु पर अधिकार जमाते हैं; वास्तविक शूद्र वे हैं जो किसी वस्तु पर अपना दावा करते हैं; कालकोठरियों में आत्म-दूषित क़ैदी वे हैं जो किसी वस्तु के मालिक बने हुए हैं; करुणापात्र परमाणु वे हैं जो केवल धन सञ्चय करने में तत्पर हैं। ये आत्मघाती, जो अपने आप को धन की गन्दी गर्द में गले तक फँसाए और कलुषित किये हुये हैं, अपने आप को नरेश तथा सभापति कहते हैं,इनमें से कुछ तो अपने आप को घोर अंधकार में डुबा कर डाक्टर (विद्यापारंगित) तथा दार्शनिक कहते हैं, कुछ कमज़ोरी और हार्दिक निर्बलता के दल्दल में फँसे हुए भी उसे "शक्ति" कहते हैं, कुछ अपनी हास्यास्पद अवस्था में भी भीतर ही भीतर अपनी श्रेष्ठता का घमण्ड रखते हैं, शुष्क भूमि पर मछली मारने के आत्म-भ्रम में पड़े हुये हैं, कुछ सम्पत्ति और अधिकार के भयानक स्वप्न से विवश हुए दुःखी हो रहे हैं, इन सब आत्म-द्रोही, विचित्र तपस्वियों के उद्धार करने तथा जगाने की आवश्यकता है। धन, विद्या, उपाधियों, और प्रभुत्व के घमण्ड, तथा सत्ता के भावों को चूर्ण कर दो। समता ही आनन्द का नियम है। असभ्यों का सा लालच,

छापा मार कर छीनने की पशु-प्रवृत्ति, और पशु प्रवृत्ति से भी निकृष्ट स्वभाव-अर्थात् अधिकार जमाने और धन संचय करने की इच्छा-यह उन्हें हैरान, परेशान और सरगर्दान रखती है। दर्प और व्यर्थ लोलुपता के मियादी ज्वर को शान्त होने दो। इस अटल सत्य को प्रत्येक कर्णपुट में प्रविष्ट होने और वेध जाने दो:—"जितना तू किसी वस्तु पर अधिकार जमाता है, उतना ही तुझ पर उस का अधिकार और आवेश होता जाता है।"

ऐ सत्य के जिज्ञासु! सभ्यता या अपने चारों ओर की सांसारिक रीतियों के दवाव से परेशान मत हो। नाम मात्र के उन्नत शील राष्ट्रों के वाहरी दिखावे और आडम्बर से भय भीत मत हो। उनके 'हाल चाल' (Facts and figures) केवल इन्द्रियों का धोखा, कहानी मात्र और कल्पनामात्र हैं। और उनकी नक़द अर्थात् असली दशा केवल मृगजलवत और छलावा मात्र है। इस वीसवीं शताब्दी में वह दिन दूर नहीं है जव कि उन्नति शील राष्ट्रों को अपनी शासन पद्धतियों तथा रहन सहन की विधियों को वदलना होगा और उनको स्वतन्त्रता तथा वेदान्त के नियमानुकूल बनाना पड़ेगा। अधिकार जमाने के भाव को त्यागने और वेदान्त विहित संन्यास के भाव को ग्रहण करने में ही राष्ट्रों तथा व्यक्तियों की मुक्ति निर्भर है। और दूसरा मार्ग नहीं है।

समस्त पाश्चात्य सभ्य देशों में, जो कि धन सञ्चय के तृषा रूपी ज्वर से पीड़ित हैं, उनकी निजी शक्तियाँ बड़े ज़ोर से कार्य्य में लगी हुई हैं, जो कि इन आत्मघाती कीड़ों (जीवों) को शीघ्र, वल्कि बहुत ही शीघ्र, इस अधिकार जमाने के भयंकर स्वप्न से अवश्य जगा देंगी। त्याग का शासन संसार को स्वतन्त्रता का राज्य दिलाने के लिये है।

प्रश्नः—क्या आप का अभिप्राय कोई नवीन मत प्रतिपादन करने का है?

उत्तरः—राम किसी मत का प्रतिपादक नहीं है। सत्य अपना प्रतिपादन आप ही कर लेता है। राम केवल परमेश्वर के मार्ग में बाधा नहीं डालता, अपने को ठीक स्फटिकवत् बनाये रखता है, और प्रकाश को स्वच्छन्दता पूर्वक फैलने देता है। उसको किसी भी रूप से चमकने दो। देह, मन सब को उस ज्वाला द्वारा प्रज्वलित होने दो। इससे अधिक सौभाग्य की कोई बात ही नहीं हो सकती। सन्देश मिल गया, सन्देश देने वाले को मार डालो।

प्रश्नः—क्या आप पैग़म्बर वा ईश्वरीय दूत (apostle orprohet) का काम करना चाहते हैं?

उत्तरः—नहीं, यह मेरी महिमा के विरुद्ध है। मैं स्वयं ईश्वर हूँ और वैसे ही तुम हो। यह शरीर मेरा रथ है।

प्रश्नः - यह (आप का संदेश) कृतकार्य्य न होगा, लोग उस को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं।

उत्तरः—इससे मुझे क्या? मैं (सत्य) कभी इन तुच्छ विचारों के सहारे नहीं चलता। युग मेरे हैं, अनंत काल मेरा है। यदि ईसा अपने मनुष्यों से स्वीकार नहीं किया गया तो इससे क्या, समस्त संसार ने तो उसे अपना लिया। यद्यपि उस के अपने समय में उसकी बात न मानी गई, किन्तु भविष्य युग तो उसके अपने ही थे।

प्रश्नः—इतिहास आप के इस विचार का समर्थन नहीं करता।

राम—आप का इतिहास अपूर्ण है, इतिहास का वह अध्याय, जिसे यह 'सत्य' लिखने वाला है, अभी तक आप ने पढ़ा नहीं। इतिहास दृढ़ संकल्प के सम्मुख काँपता है, चाहे

वह संकल्प एक ही मनुष्य का हो। इतिहास भीतरी कारण को भूल कर केवल बाह्य चिन्हों के अध्ययन करने में अपने को नष्ट कर देता है।

प्रश्नः—इमर्सन के अनुसार प्रेम का वास्तविक संबन्ध 'एक ही भाँति महसूस करना' है, और आप, जो सामान्यरूप से किसी मत विशेष के अनुयायी विशेष नहीं हैं, किसी के साथ भी अनुकूल होते दिखाई नहीं देते, कैसे प्रेम-विहीन जीवन की ओर हमें खींच रहे हो!

उत्तरः—मैं अपनी चित्रकारियाँ (संसार) को भिन्न दृष्टि से देखने में ही आनन्द लेता हूँ। पीछे से इनको मैं अनुदार व्यक्ति (conservative) के समान देखता हूं, और आगे से एक उन्नत उदार व्यक्ति (progressive liberal) की भाँति इन का अवलोकन करता हूं। राम (वा पूर्ण) की दशा में मैं अपनी दायीं ओर से इन का अवलोकन करता हूँ; और एक छिद्रान्वेषक (critic) के रूप में मैं अपनी बाईं ओर से इनका निरीक्षण करता हूँ। ये सब अन्दाज़ (poses) और दृष्टियां नितान्त मेरे ही हैं। जब ग्वालन दूध वा दही मथ कर मक्खन निकालती है, तो दाहने हाथ की डोरी भी वही खींचती है, और बाएँ हाथ वाली डोरी भी वही। सभी दृष्टियां मेरी अपनी ही होते हुए, मैं किसी से विरोध कैसे कर सकता हूँ? इस प्रकार मैं भिन्न २ भाँति की लहरों में तरङ्गित होने वाला प्रेम का महासागर हूँ। मैं प्रत्येक व्यक्ति से असंगत होना स्वीकार करता हूं, आओ और मेरे साथ इस नानत्व (असमानता) में एकत्व (समानता) का आनन्द लूटो।

प्रश्नः—क्या यह एक भावनायोग (mysticism) नहीं है? एक व्यक्ति किसी दूसरे के साथ, जो कि उससे पूर्ण रूप से विलग रहता है, कैसे अभेद हो सकता है?

उत्तरः—अच्छा, तथास्तु । मैं भी विस्मित हूँ कि यद्यपि समस्त रूपों (अवस्थाओं) में हम एक नहीं हो सकते, और तब भी हम एक हैं।

सम्भव है कि पंगु दर्शन-शास्त्र इस को सिद्ध करने के योग्य न हो, इन्द्रियाँ इसे दर्शाने में पूर्णतया असहाय हों, तब भी यह है ऐसा ही। जब तत्त्व का अनुभव कर लिया जाता है, तब बाह्य नामरूप नष्ट हो जाता है। प्रेम इसे सिद्ध करता है:—"That Thou art" "वह तू ही है" "तू आप ईश्वर है"

प्रश्नः—आप ईश्वर को नपुंसकत्व में क्यों संबोधित करते हैं?

उत्तरः—कोई ईश्वर को 'स्वर्गीय पिता' करके पूजते हैं, और उसे पुल्लिग नाम से संबोधित करते हैं। कुछ लोग परमात्मा को 'दिव्य माता' करके पूजते हैं, उन्हें उस को स्त्री लिङ्ग वाचक नाम से संबोधित करना चाहिये। अन्य लोग ईश्वर को 'प्रिय प्रेम-पात्र' करके पूजते हैं (जैसे फ़ार्सी कवि)। अतः ईश्वर के लिये कोई भी नाम नियत करने से पूर्व हम को यह निश्चित कर लेना चाहिये कि आया ईश्वर मिस (क्वारी कन्या) है, मिसेज़ (विवाहिता स्त्री) है, वा मिस्टर (महोदय-मनुष्य) है।

प्रश्नः—तब फिर ईश्वर है क्या?

उत्तरः—न तो मिस है, न मिसेज़ है, न मिस्टर है, किन्तु मिस्ट्री (गुह्य रहस्य) है!

संख्या (२)

स्वत्व वा अधिकार ।

निम्न लिखित में से बहुत कुछ भाग पहिले एक प्रश्न के उत्तर में लिखा गया था, जो प्रश्न रास्तों के फटने से कुछ पहिले पूछा गया था।

× × × ×

प्रिय महोदय! क्या यह आप थे जिसने एक वार साम्पत्तिक अधिकारों, या यदि आप मुझे इस त्रुटि-सुधार के लिये क्षमा करें तो साम्पत्तिक अपकारों के सम्बन्ध में राम के विचार पूछे थे? अच्छा, वह कोई भी हो, जिस किसी ने प्रश्न किया था, राम की दृष्टि में वह आप ही का पवित्र आत्मा था, चाहे वह इसी शरीर में हो, वा किसी अन्य में।

स्वत्व वा अधिकार अथवा गुण क्या है?

जो किसी के लिये उचित हो वा एक व्यक्ति (या वस्तु) की स्थिति के लिये यथार्थ हो। स्वभाव से हलकापन (भाराभाव) और दहन शीलता इत्यादि, हाइड्रोजन के गुण हैं, परन्तु वह शीशी जिस में कि वह वायु भरी है उस का गुण नहीं है। इसी प्रकार मनुष्यत्व, नहीं २ ईश्वरत्व, आप का गुण है, परन्तु वह घर जिस में आप रहते हैं, वा वह रत्न (जिसे आप पहनते हैं), आप का गुण कभी नहीं हो सकता। मनुष्य अपना जन्म-जात स्वत्व, अपनी निजी सम्पत्ति वा स्वाभाविक गुण (ईश्वरत्व) खो बैठने को तैयार रहते हैं। परन्तु घर, स्वर्ण व अन्य ऐसी वस्तुओं को अपनी सम्पति (वा गुण)

समझ कर उन से अति आसक्ति करके अपने आप को निरन्तर कैसा हास्यास्पद वनाते हैं! कैसी अत्यन्त हँसी की वार्ता है!

धन और सम्पत्ति के आधार पर ये सव भेद व विभाग वैसे ही नितान्त अस्वाभाविक हैं, जैसे मनुष्यों का जूतों के अधार पर जाति-विभाग।

इस से राम घोषित करता है कि अनुभव में एक मात्र रुकावट वा पर्दा यह साधारण स्वत्व का भाव, अर्थात् गठरियों और सामान के अधिकारों का विचार, ही है। जिस क्षण कि हम किसी वस्तु पर अधिकार जमाना चाहते हैं, उसी क्षण हम आप ही आत्म-भ्रम रूपी दानव के चंगुल में फँस जाते हैं। त्याग, या जिसे आप सव पर अधिकार कह सकते हैं, सत्य से अभेदता, ही शुद्ध और सरल वेदान्त है। पूर्ण प्रजासत्ता, समानता, वाहरी सत्ता के वोझ का दूर फेंकना, व्यर्थ धन-संचय की वासना का अलग हटाना, समस्त सांसारिक अधिकारों को परे फेंक देना, वड़प्पन के भावों का परित्याग, और लघुत्व की व्याकुलता का विसर्जन, यह वेदान्त का भौतिक वा वाह्य रूप है। और वेदान्त इसी भाव को मानसिक तथा आध्यात्मिक अवस्था में भी ले जाना है। देह, वुद्धि, लेख, व्याख्यान, घर, कुटुम्व, यश और प्रतिष्ठा इत्यादि प्रत्येक वस्तु पर दावे का पूर्ण त्याग ही वेदान्त है। दूसरे शब्दों में, समस्त हदवन्दियों और वन्धनों को नाश कर देना, दूसरों को स्वतंत्र करके अपने आप को न फँसाना, किन्तु ईश्वर की नाईं प्रत्येक शक्ति, परमाणु, तारागण, वा संसार के वृक्षादि पर अपना महान प्रभुत्व प्राप्त कर लेना ही वेदान्त है। इस विशाल जगत द्वारा वेदान्त के अनुभव

करने के मार्ग को सुगम करने के लिये बहुत से संगठित उपाय (प्रायः अज्ञात रूप से) किये जा रहे हैं। अन्त में संन्यास की ध्वजा समस्त संसार पर फहरा कर ही रहेगी।

कुछ वेदान्ती लोग तो पूर्ण प्रेम-राज्य में अपना जीवन व्यतीत कर ही रहे हैं, और कुछ प्रान्तों में प्रेमाग्नि की यह ज्वाला ऐतिहासिक काल के भी पूर्व से जीवित (प्रज्वलित) चली आ रही है।

अभी एक ऐसे साधू का ध्यान कीजिये कि जो भगवती भागीरथी के तट पर बैठा हुआ है, और गाएँ, कुत्ते, मछ्लियां तथा पक्षी उसके प्रेम से उत्साहित वा निडर होकर उसके पास आते हैं और उसके हाथों से रोटी लेकर उसके साथ खाते हैं। आओ, मैं इस से भी अत्यन्त बढ़ा चढ़ा दृष्टान्त दूं।

मुझे एक स्वामी का पता है कि जिस का शरीर एक गहरे घाव से पीड़ित था। कीड़े देह-चर्म को खाए जा रहे थे, और वह उन कीड़ों को नाश करने के लिये किसी लेप का उपयोग नहीं करता था। या जब कीड़े तृप्त हो कर घाव पर के पीव से गिर पड़ते थे, तो वह हँस कर और मुस्करा कर उन्हें उठा लेता और फोड़े तक पहुंचने में सहायता देता था। इस छोटे से शरीर पर संसार के प्रत्येक कीड़े का अधिकार है, और यह विशाल विश्व मेरा है। विश्व मेरा शरीर है, वायु और भूमि मेरे वस्त्र और जूते हैं।

स्वामी का अर्थ लगातार दाता का है। सत्य में जमे रहो और अन्य सब वस्तुओं को जाने दो। संन्यासी जो अपनी भिक्षा मात्र भी अति दीनों को दे देता है, जब उसके पास और कोई वस्तु देने को नहीं होती, तो वह आनन्द पूर्वक अपना शरीर भी मक्खियों, कीड़ों, और साँप

बिच्छू इत्यादि के हवाले कर देता है, और सब का आत्मा होकर वह उस (भोजन) को पाने वाले की अवस्था में भी आनन्द लेता है। इसी प्रकार मक्खियां और कीड़े होकर वह मांस के खाने में आनन्द लेता है, और वायु तथा ऊष्णता हो कर अस्थियों के सूखाने में आनन्द भोगता है।

साधारण दानः—अधिकार जमाने के भाव ने ऐसा पलटा खाया है और मुआमला यहां तक पहुँच गया है कि सम्पत्ति का नाम मात्र का अर्ध भाग वापिस लौटा देना—विशेषतः उस सम्पत्ति का भाग, कि जो समाज के एक अंग को अधोगत और दरिद्र करके तथा अतिशय दबाकर, एकत्रित किया गया है—उत्तम दान कहलाता है, मानों एक मृतप्राय जीव के मुँह में थोड़ा सा जल डाल कर उस की पीड़ा को अधिक बढ़ा देना बड़ा भारी पुण्य-कर्म है। किञ्चित व्याज (जिस का असली अर्थ संस्कृत में कपट और छल है और जो आजकल सूद के नाम से कहलाता है) न लेना बहुत बड़ा अनुग्रह समझा जाता है, क्योंकि व्याज (कपट) का आज कल रवाज है।

यह तो यूरोप और अमेरिका के दान की व्याख्या है। भारतीय दान की पूछो, तो वह भूखे मरने वाले, मज़दूर पेशा लोगों (शूद्रों) के लिये इतना भी कष्ट नहीं उठाता, बल्कि वह उन दानियों को सीधा स्वर्ग ले जाता है कि जो ईश्वर के भण्डार में से अति तृप्त आलसी लोगों अर्थात् पत्थर वत् जड़ धर्म के उच्च प्रतिनिधि रूप पुरुषों को पेट भर खिलाते रहते हैं।

मैं सरलता (सादगी) को ही लौकिक व्यवहार बनाऊँगा। तुम्हें अधिक आकर्षक कौन बनाता है ? क्या वे वस्त्र हैं जो तुम्हें छिपा देते हैं या सौन्दर्य (वा ईश्वरानुग्रह) जो कि तुम्हें

प्रकट कर देता है? वस्त्रों वा अन्य किसी वस्तु से सौन्दर्य्य उधार लेने की आवश्यकता नहीं। स्वाभाविक मुस्कान, स्वास्थ्य, और प्रसन्नता धारण करो।

कोई व्यक्ति आकर चाहे चोरी करे। गरीब सरकार बहुत सम्पतियों पर अधिकार जमाने से चाहे अपने आपको मूर्ख बनाये, तुम्हें उस से क्या? अपना कर्तव्य तुम मत छोड़ो। सत्य, सत्य ही तुम स्वयं हो। निस्सन्देह (सांसारिक धन की) खारी समुद्र-फेन के लिये नहीं, किन्तु सत्य के लिये तुम उठो। क्या इसके लिये हमें कोई विश्वविद्यालय की उपाधियों की आवश्यकता होगी? मूर्खता (बेहूदापन)। अन्तिम उपाधि तो स्वतः अवश्य प्राप्त वा धारण हो जायगी।

यह सत्य है कि एक स्वप्न-सिंह के भगाने के लिये एक स्वप्न रचित खड्ग की आवश्यकता है। परन्तु जाग्रत, सचेत अवस्था की दृष्टि से उस स्वप्न-प्रदेश का सिंह और खड्ग दोनों ही किसी गिनती में नहीं आते। ठीक यही दशा बाह्य (भौतिक) विद्याओं और कला कौशल की है। वे सांसारिक ज्ञान के रूप में चाहे कितने ही परमावश्यक क्यों न हों, परन्तु दिव्य जागृति (आत्म-साक्षात्कार) में उनका कोई मूल्य नहीं। आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में बड़ी २ अड़चन रूप बाधाओं में से बुद्धि (बाह्य ज्ञान) की पूँजी का अत्यधिक मान-सम्मान, विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ, प्रमाण-पत्र, मान सूचक पद, और अन्य मानसिक अधिकार भी हैं। आत्मानुभवी मनुष्य के लिये यह संसार मनुष्यों की भ्रामक अवस्था की रचना मात्र है जो कि इस स्वयं-रचित पागलखाने (सृष्टि में पारस्परिक इशारे से एक दूसरे को संभाले रखते था बनाये रखते हैं। संसार के समस्त पदार्थ उन भीलों के सदृश हैं जिनको कि एक भ्रान्त वा भ्रम-मुग्ध hypno-

tised) मनुष्य सूखी पृथ्वी पर रच लेता है, और ऐसे स्वभाव वाला होने पर उन वस्तुओं का ज्ञान भी, जिसके कारण बड़े २ विद्या-पारंगत (doctors) और अध्यापक (professors) गर्व करते हैं, और बड़प्पन का घमण्ड रखते हैं, भ्रम वा भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संसार आकाशवत् है, और ऐसा ही इन लोगों का ज्ञान भी। एक आत्मानुभवी मनुष्य के लिये, जो कि समस्त सांसारिक दृश्य के केन्द्र-स्थल (कारण) पर पहुँच चुका है, न तो बड़े २ मण्डल, नदियाँ, पर्वत, सूर्य्य, तारे ही आश्चर्य्य जनक दिखाई देते हैं, और न ही ऐसे पदार्थों का ज्ञान-कि जो ज्योतिषियों (astronomers), गणितज्ञों (mathematicians), वनस्पतिशास्त्रज्ञों (botanists), भूतत्त्वज्ञों (geologists) तथा पशुविद्या-विशारदों (Zoologists) ने प्राप्त किया होता है-केवल खेल, तमाशा दिल्लगी मात्र के अतिरिक्त किसी और असली मूल्य का जचता है। जो लोग सांसारिक पदार्थ रखते (पूँजी पति) हैं, और जो उन का ज्ञान रखते (विज्ञानी हैं), वे भी उन्ही पदार्थों की ही स्थिति में होते हैं, अर्थात् वे भी दृश्य-मात्र पदार्थ होते हैं। विद्या पारङ्गतों (doctors), दार्शनिकों (philosophers) और अध्यापकों (professors) की धमकियां, अनुग्रह, छिद्रान्वेषण, सम्मतियां वा कटाक्ष, ब्रह्मज्ञानी पुरुष पर कुछ प्रभाव नही डालते, अर्थात् निरर्थक जाते हैं। साधारणतया ये विश्व-विद्यालय, प्रदर्शनियां, और मेले, ये सब उस भ्रामक दशा के बढ़ाने वाले साधनों से अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। आम तौर पर ये गिरजे, मन्दिर, सभाएँ तथा सम्मेलन आदि उस भ्रम पूर्ण सांसारिक-स्वप्न के बढ़ाने
भिन्न २ ढंग हैं। जीवन मुक्त किञ्चित आश्चर्य वा चकित

नहीं होता यदि सूर्य जम जाने वाली स्थिति तक ठण्डा हो जावे, अथवा चन्द्रमा सर्वोच्च दरजे तक गर्म हो उठे, नहीं नहीं, यहां तक कि चाहे अग्नि की ज्वाला लकड़ी के ऊपर होने की जगह उस के नीचे जलने लगे, अथवा समस्त आकाश एक काग़ज़ के पत्रे (roll) के समान लपेट लिया जाय।

एक समय था जब ब्राह्मण (पुरोहित) संसार का शासन करते थे, एक युग था जब क्षत्रिय (शूरवीरता) शासक थे; अब ये दिन हैं कि जब वैश्य (पूँजीपति) शासन करते हैं; और इस के पश्चात मज़दूर पेशा लोगा (शूद्रों) की प्रधानता का युग आ रहा है; परन्तु ऐसे शूद्रों की प्रधानता का कि जो संन्यास के भाव से युक्त वा पवित्र हो चुके हैं।

यूरोप और अमेरिका में मज़दूर-पेशा जाति (शूद्र वर्ण) परम्परागत नियमों तथा धार्मिक आज्ञाओं द्वारा जकड़ा तथा बँधा हुआ नहीं है, और तब भी उसकी स्थिति संतोष जनक नहीं है। भारत में यह बुराई और अन्याय वर्णव्यवस्था के कारण द्विगुणी बढ़ गई है, जिस से सब जातियों का आत्म-भ्रम और भी सहायता पा कर बढ़ता जा रहा है। यह वर्ण-व्यवस्था हड़तालों को तो रोकती है, किन्तु समस्त राष्ट्र को और भी अधिक डरपोक और भेड़ से भी अधिक अशक्त बना देती है।

इस समय तक वेदान्त केवल कुछ इने गिने लोगों की सम्पत्ति बना हुआ था। वह बुद्धि की सीमा (हद्द) तक ही अधिकतर बना रहा। यह वेदान्त रूप शिशु इतना काल हो गया कि पृथ्वी (हिमालय) के गर्भ में ही ठहरा रहा,

था, परन्तु अन्त में अब वह नीचे मैदानों में ऐसे आ रहा है, जैसे श्री भागीरथी ब्राह्मणों वा शूद्रों को एकही भाँति नहलाती हुई, मनुष्य वा ईश्वर को एकही भाँति पवित्र करती हुई, और सर्व प्रकार के भेद भावों को मिटाती हुई पर्वतों से नीचे उतरती है। इन्द्रियोतपन्न मनुष्य (organic man) एक सा होना चाहिये, जिस का अनुभव शायद् कभी ही होता है। जैसे तुम्हें नियत समय पर भोजन करने की आवश्यकता जान पड़ती है, परन्तु उस का पचना वा अंग प्रत्यंग में और शरीर की भिन्न २ इन्द्रियों में विभाजित होना इत्यादि अपने आप ही होता रहता है, तुम्हें ज्ञात नहीं होता; ठीक इसी प्रकार जब तुम एकता और अखंडता वा अभिन्नता (प्रेम और ईश्वरत्व) पर अपना ध्यान जमाते हो, तो ये भेदता और उचित भिन्नता अपनी रक्षा आप कर लेते हैं।

ऐ राजकुमारो, पुरोहितो, शूद्रों, और भारत की शासक जातियों! क्या तुम कुछ भावी वर्षों की दशा-पर विचार कर सकते हो? इसे तुम विचित्र और विलक्षण कहो, किन्तु मुझे मेरे सम्मुख स्वामियों का एक संसार दिखाई देता है; देवता गण पृथ्वी तल पर चल रहे हैं; मनुष्य की मिट्टी का बना हुआ जाति-विभाग सब बह गया वा मिट गया है; भारत, चीन, अमेरीका, आङ्गल देश, आदि के परस्पर भेद सब नाश हो गए हैं; नवीन स्फटिक (crystals-सितमणि) अपने समय पर फिर मिट जाने के लिये उत्पन्न हो रहे हैं।

हे सोने वाले प्यारों! अपने नेत्रों से नाप तौल का पर्दा हटा दो, और उच्चतम संन्यासियों को महानीच शूद्रों से हाथ मिलाते देखो। वह देखो! भिक्षा-पात्र फावड़े वा कुदाल के रूप में परिवर्तित हो गया! संन्यासियों ने अपनी अक-

मेएयता दूर कर दी; शूद्रों का परिश्रम सन्यास-पदवी पर पहुंच गया; त्याग भाव ही सब को कार्य्य-परायण कर रहा है; एक वेश्या का निर्लज्जता पूर्ण साहस और 'राम' की पवित्रता एक में मिल गई; एक मेमने (lamb) की नम्रता और सिंह की दृढ़ शूरता परस्पर संयुक्त हो गई; परस्पर विरोधी मिल गए और बीच बीची अस्वाभाविक भेद-भाव मिट गए हैं; विश्व एक कुटुम्ब हो गया है। इस समस्त को देखो, ध्यान पूर्वक उधर देखो।

हमें क्या खड्ग की आवश्यकता होगी या अग्नि की? नहीं। क्या कोई पुलीस की? नहीं। क्या यह कल्पना मात्र है? यह कोई असार काल्पनिक रचना नहीं है। क्या यह साधारण स्वत्व-वाद (Communism) वा सामाजिकता (Socialism) है? सम्भव है ऐसा हो। किन्तु भारत के लिये यह घरेलू उन्नति है, अर्थात् वेदान्त का अति स्वाभाविक प्रयोग है। भारत निवासियों! यदि तुम अपने आप को जान लो और त्याग-भाव धारण करलो, तो फ़िर यह रोग कहाँ रहेगा? जब मानसिक पीड़ा दूर हो गई, तो शारीरिक व्यथा को भागना ही पड़ेगा। छल कपट पूर्ण कार्य्य की आवश्यकता नहीं, चालें खेलने की आवश्यकता नहीं; सन्देह, तथा भयकी भी आवश्यकता नहीं; निर्बल अनीश्वरवादी वा आत्मघातियों को उस का अनुसरण करने दो।

मैं राम बादशाह हूँ, जिसका सिंहासन तुम्हारा निज हृदय है। जब मैं ने वेदों द्वारा शिक्षा दी थी, जब मैं ने कुरुक्षेत्र, यूरूशलम, तथा मक्का में शिक्षा दी थी, तब मुझे गलत समझा था, मैं फिर से अपनी आवाज़ उठाता हूँ। मेरी वाणी तुम्हारी वाणी है। तत् त्वम् असि। जो कुछ कि तू देखता है, वह सब तू ही है।

तुम में से कुछ लोग भवें चढ़ा रहे हैं। मैं देखता हूँ कि तुम में से कुछ लोगों ने अपनी २ नासिकाएँ तीस दर्जे के कोण तक टेढ़ी कर ली हैं। तुम में से किसी २ ने घृणा वा उद्वेग से उपदेश-पत्र परे फेंक दिया है। जो तुम चाहो, करो; किन्तु दैवी कोप वा ईश्वरीयसत्ता अपना कार्य्य करके ही रहेगी। कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती; कोई नरेश, दानव, देवता उसका सामना नहीं कर सकते। सत्य का नियम अटल है। घबराओ नहीं। मेरा सिर तुम्हारा सिर है; यदि तुम्हारी प्रसन्नता इसी में है, तो तुम उसे काट लो; परन्तु उसके स्थान पर एक सहस्र और उत्पन्न हो जायंगे।

शम्स तबरेज़ यही राग गाता है। क्या प्यारे मधुर स्वर वाले (बुल्ला शाह) तथा पंजाब के शक्तिशाली 'गोपालसिंह ने भी यही गान अलापा था? क्या ईसा मसीह ने यह सत्य प्रलापा था? क्या मुहम्मद साहब ने यही नवचन्द्र देखा था? यह मेरे लिये कुछ भी नहीं है। मेरी ईद तब आती है जब कि मैं उसे (ईश्वरसत्ता को) देखता हूँ। सनातन सत्य सर्वदा नवीन है। तुम्हारी ईद तब आती है, जब तुम अपने आप का अनुभव करते हो। जब तुम अपने वास्तविक आत्मा अर्थात् ईश्वर वा सत्य में जाग उठते हो, तब ये सब सिद्ध (prophets) और महात्मा (Saints) जो तुम्हारे अपने आत्म-अज्ञान के नायक वा विजयता हैं, ये सभी तुम्हीं में लीन हो जाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

❀ अरण्य-सम्वाद ❀

(संख्या २)

सुधारक ।

"Higher and still higher
From the earth thou springest
Like a cloud of fire;
The deep blue thou wingest
And singing still dost soar,
And soaring ever singest"

(Shelly)

अर्थः—

ऊंचे से ऊंचा तू पृथिवी से ऊपर उठता है ।
अग्नि के मेघ के समान नीलतम हुआ तू उड़ता है ।
और तिस पर भी गाते हुए तू उड़ता है और उड़ते हुए
तू नित्य गाता है ।

[शेली]

❀ पवित्र छाया ❀

[रुथ क्रैफ्ट द्वारा फ्रान्सीसी भाषा से अनुवादित]

बहुत ही समय गुज़रा जब एक इतना उत्तम महात्मा था कि स्वर्ग के देवतागण चकित होकर यह देखने आते थे कि कोई मर्त्य (मनुष्य) इतना धर्मात्मा कैसे हो सकता है । वह जब केवल टहलता था, तो उस के दैनिक जीवन से सद्गुण (नेकी) बिना उस के जाने भी ऐसे फैलते थे जैसे तारे से प्रकाश और पुष्प से सुगंध ।

उस की दिनचर्य्या का सारांश दो शब्द थेः—"वह दान देता और क्षमा प्रदान करता था"। तौ भी ये शब्द उस के मुख से नहीं निकलते थे, किन्तु उस के उत्साह पूर्ण मुस्कान, दया, क्षमा, शीलता और उदारता से ही (स्वतः) स्पष्ट होते थे।

स्वर्गीय दूतों ने ईश्वर से कहाः—हे प्रभो! आप उसे कुछ दिव्य शक्ति प्रदान कीजिये।

ईश्वर ने उत्तर दियाः—"मुझे देना स्वीकार है, पर उस से पूछो कि वह क्या चाहता है।"

तब देवताओं ने महात्मा से पूछाः—"क्या आप अपने करस्पर्श मात्र ही से रोगियों को निरोग करना चाहते हो?"

"नहीं", महात्मा ने उत्तर दिया, "मैं यही चाहूँगा कि उसे ईश्वर ही करे।

"क्या आप पतित आत्माओं को धर्म में लाना तथा पथ-भ्रष्ट हृदयों को सन्मार्ग पर फेर लाना पसन्द करते हो?"

"नहीं, वह कार्य्य स्वर्गीय दूतों का है। मैं सविनय निवेदन करता हूँ कि मैं यह (धर्म में फेर लाने का) कार्य नहीं करता।"

"क्या आप सन्तोष का नमूना वन कर अपने सद्गुणों के प्रकाश से मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित करना और इस प्रकार ईश्वर का महत्व वढ़ाना चाहते हो?"

महात्मा ने उत्तर दिया, "नहीं, यदि मनुष्य मेरी ओर आकर्षित होंगे, तो वे ईश्वर से पृथक् हो जाएँगे। प्रभु के पास अपने महत्व वढ़ाने के अन्य अनेक साधन हैं।"

स्वर्गीय दूतों ने चिल्ला कर कहा, "तव आप क्या चाहते हैं?"

महात्मा ने मुस्कराते हुए पूछा "मुझे किस वस्तु की इच्छा हो सकती है ?"

यदि ईश्वर मुझ पर अपना अनुग्रह प्रदान करे, तो क्या उस अनुग्रह के साथ, मेरे पास प्रत्येक वस्तु न हो जानी चाहिये ?"

परन्तु स्वर्गीय दूतों ने यह इच्छा प्रकट की, कि "आप को कोई न कोई सिद्धि ज़रूर मांगनी चाहिये; नहीं तो आप को एक न एक सिद्धि अवश्य लेना पड़ेगी।"

महात्मा ने कहा, "वहुत अच्छा, (यह दो) कि मैं विना जाने ही महान उपकार कर सकूँ।"

इस पर स्वर्गीय दूत वड़े चकित हुए। उन्हों ने एक दूसरे की अनुमति से निम्न वात निश्चित की; "प्रत्येक समय जव कि महात्मा की छाया उसके पीछे व दोनों ओर पड़े जिस में कि वह देख न सके, तो उस (छाया) को यह शक्ति होगी कि वह रोग अच्छा करदे, दुःख शान्त कर दे और शोक भुला दे।

ऐसा ही हुआ, जव महात्मा अपनी छाया के साथ २ चलता और वह (छाया) पृथ्वी पर उसके किसी ओर वा पीछे पड़ती, तो वह शुष्क मार्गों को हरा भरा कर देती, मुर्झाए हुए वृक्षों को तरोताज़ा कर देती, शुष्क स्रोतों को निर्मल जल प्रदान करती, छोटे पीतवर्ण वच्चों को ताज़ा रंग, और अप्रसन्न माताओं को प्रसन्नता देती थी।

परन्तु महात्मा केवल टहलता था और उसके नित्य प्रति के जीवन से सद्गुण, विना उसके जाने, इस प्रकार फैलते थे, जिस प्रकार तारागण से प्रकाश और पुष्प से सुगंधि।

और लोग उसकी विनम्रता का सम्मान करते हुये, चुप

चाप उसका अनुकरण करते, और उससे उसकी अलौकिक सिद्धि के सम्बन्ध में कभी कुछ न कहते थे। धीरे धीरे वे उसका नाम भी भूलने लगे और उसे 'पवित्र छाया' ही कह कर पुकारने लगे।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परः।"

अर्थः – ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है।

भावार्थः—अपने लिये सत्य की मात्रा इतनी अधिक होने दो कि उस मात्रा के सम्मुख सब नाम रूप. धन और व्यक्तित्व का तुच्छ दिखाव धीरे २ शून्यता में काफ़ूर हो जाय, और जब सत्य के साथ तुम्हारी अभेदता सच्ची और असली होगी, तब डाह के तीर तुम्हें न चुभेंगे, गैंडा अपनी सींग भोंकने के लिये अणुमात्र भी स्थान न पाएगा, सिंह को अपने नख जमाने का स्थान न मिलेगा, खड्ग को घुसने के लिये कोई जगह न मिलेगी, तोपों की गोलियाँ तुम्हारे ऊपर बरसती हों, परन्तु तुम्हें छू तक न सकेंगी।

केवल सत्य ही के साथ तुम्हारी एकता होनी चाहियें। यदि तुम्हें एकाकी भी खड़ा होना पड़े, तो तुम सत्य में रहो, सत्य में प्राण त्यागो। यदि सत्य-जीवन की नभ-स्पर्श करने वाली शिखरों पर तुम अकेले छोड़ दिये गये हो, तो सद्धर्म रूपी सूर्य्य ही तुम्हारे लिये साथी बहुत होगा। तुम्हारे से जीते जागते उपदेश पाकर झुण्ड के झुण्ड साथी आने लग जाएंगे। इस प्रकार का बनाया हुआ संगठन स्वाभाविक होगा। खुशामद करके संगठन करने के पीछे मत भागो। मैं किसी को अपना मतग्राही बनाना तथा बहुत से अपने अनुयायी एकत्र करना नहीं चाहता, मैं केवल सत्य में रहता हूँ। सत्य को अपनी

रक्षा और रक्षकों की आवश्यता नहीं। क्या सूर्य्य का प्रकाश किसी ईश्वर-दूत और पैगम्बर की आवश्यकता रखता है? मैं सत्य को नहीं फैलाता, सत्य मुझे चलाता और अपने आप फैलता है।

कालानुवर्तन (adaptatian) के विषय में विकास-वादियों का कहना है कि "समष्टि रूप से यह संसार जीवित रहने के लिये कठिन जगत् नहीं है, यदि कोई समयानुकूल उचित रीतियों के अंगीकार करने की स्वाभाविक चतुरता रखता हो। झुण्ड के झुण्ड पशुओं, वृक्षों और मनुष्यों ने यह कुशलता प्राप्त की है, और वे तथा उनके वंशज भी जीवन-प्रतिवादिता (Struggle for existence) के प्रभाव तले अपनी स्थिति बनाए रख सकने के योग्य हैं। हाँ, जिस किसी ने जीवित रहने की युक्ति प्राप्त करली है, वही ऋषि है; समस्त संसार को उस के साथ एक ताल हो जाना ज़रूरी है, क्योंकि वह विश्व के साथ एक ताल हुआ होता है। इस तुच्छ अभि-लापी अहंकार के त्याग द्वारा सब से अभेद पुरुष के आगे रुकावटें कैसे उपस्थित हो सकती हैं? परन्तु लोग इस तत्त्व-विद्या के नियम का दुरुपयोग करने में बहुत दक्ष हैं। वा तुले रहते हैं)" ।"The child of altruism alone survives" केवल परोपकारवाद का बालक (जिज्ञासु) ही जीवित रह सकता है"।

परोपकारवाद क्या है?

क्या जो कुछ लोग आशा करते, रुचि से पसन्द करते, इच्छा करते और उपयुक्त समझते हैं, सदैव उसी को निरन्तर खोजते रहना या उसी की ओर ध्यान देते रहना ही उसका अर्थ है? क्या (समयानुकूल) "अंगीकार करने में कुशलता"

का अर्थ सब लोगों की सम्मति के अनुसार चलना ही है? अथवा क्या यह 'कर्म करने' का ज्वर है जो मनुष्य मात्र की सेवा-भाव बनाये हुये है?

नहीं। सत्य पूर्ण स्वस्वार्थवाद(Truthful Individualism=अर्थात् सच्चा २ स्वार्थवाद) ही सच्चा परोपकारवाद (altruism) है। वह मनुष्य जो अपने आप को प्रसन्नता और प्रेम के साथ भली प्रकार एकताल बनाए रखता है, और सत्य को, जैसा उसे अनुभव हुआ है, क़िसी रू-रियायत वा लोकमत के प्रभाव से मोड़ तोड़ किये विना वैसा ही स्पष्ट वर्णन करता है; केवल ऐसा ही मनुष्य अन्त में जाकर जीवित रहता है।

जब देखने में नया और आश्चर्य जनक कोई भाव तुम्हारे हृदय में वेचैनी उत्पन्न कर रहा हो, तो विश्वास करके जानो कि तुम्हारे आस पास सहस्रों ने उसी भाँति कम से कम भान अवश्य किया होगा, चाहे उन्हों ने ठीक ठीक उसी भाव को समझा न हो; ठीक वैसे ही जैसे कि खेत में जब एक तरबूज़ पकता होता है, तो उसी ऋतु के प्रभाव से अन्य सहस्रों भी बढ़ते होते हैं। जिस समय एक पत्ती, पर्ण वा पल्लव (stamen) एक वृक्ष पर उगता है, अथवा एक पौदा वसन्त ऋतु में भूमि के बीच में से अपना सर ऊपर उठाता है, तो उस के आस पास लाखों और भी उत्पन्न होने पर उद्यत होते हैं। एक नवीन आध्यात्मिक, सदाचारी वा धार्मिक, तथा मानसिक जन्म सदैव पवित्र है—ऐसा पवित्र जैसे माता के गर्भ के भीतर का शिशु। उसे छिपाना मानों पवित्र आत्मा (Holy ghost) के प्रतिकूल एक प्रकार का पाप (blasphemy कुफ़र वा ईश्वर-निन्दा) है।

अपनी आत्मा के साथ सत्य व्यवहार करने से तुम अपने आपको सब के साथ सच्चा पाकर चकित हो जाओगे। सत्य और केवल सत्य ही के सम्बन्ध में रियायत (concession, स्वीकारता), त्याग और अनुरूपता करना निष्पाप है। मनुष्यों, आकृतियों, उपाधियों, धन, विद्या और रूपों का सम्मान पाषाण-पूजा है। सांसारिक बुद्धिमत्ता तो अज्ञान का निमित्त मात्र वा बहाना मात्र है।

" With joy the stars perform their shining ;
And the sea its long Moon silvered roll ;
For self-poised they live, nor pine with noting
All the fever of some differing soul."

" Bounded by themselves and unregardful,
In what state God's other work may be,
In their own tasks all their powers pouring
These attain the mighty life you see"

" Resolve to be thyself, and know that he
Who finds himself loses his misery."

अर्थः—

"प्रसन्नता के साथ तारागण अपना अपना चमकने का
कार्य कर रहे हैं,
और सागर अपनी रुपहली चान्दनी भरी लम्बी २ लहरें
ले रहा है;
क्योंकि वे अपने आप में निर्द्वन्द्व रहते हैं और अपने से
भिन्न किसी जीव के समस्त (चिन्ता रूपी) ज्वर को देख कर
क्षीण नहीं होते हैं।"

"ईश्वर के अन्य कार्य किस अवस्था में हो सकते हैं, इस ओर ध्यान न करके और अपने में ही वृत्ति जमाकर वे अपने ही कामों में अपना सारा वल खर्च कर देते हैं जिससे वे उस महान जीवन को कि जिसको तुम देख रहे हो, प्राप्त होते हैं।"

"तू अपने आप में आने (स्थित होने) का निश्चय कर और यह जान कि वह जो अपने आप (निज स्वरूप) को पा लेता है, वह ताप वा दुःख से रहित हो जाता है।"

चाहे जीवन हो वा मरण, मैं केवल सत्य की ही परवाह करता हूँ। चाहे पाप हो वा शोक, मैं अन्तरात्मा के साथ सच्चा रहूँगा।

O Truth, I lovo Thee; O Love, I am true to Thee.

ऐ सत्य ! मैं तुझ से प्रेम करता हूं (अर्थात् मेरी प्रीति तुझ सत्य से है); ऐ प्रेम स्वरूप ! मैं तेरे साथ सच्चा हूं।

'कार्य्य-कर्त्ताओं' का जो किसी चीज़ के 'पूरा करने में' वा 'प्रत्यक्ष परिणाम के प्राप्त करने में' ऐसी चिन्ता करना है, कि इससे उन के सब कामों वा बातों की प्रसिद्धि हो जाय और रजिस्टरों में उन के मुरीदों वा अनुयायियों की भारी संख्या दर्ज हो जाय, यह (उन में चिन्ता करने की प्रकृति वा वृत्ति) एक भारी अशुभ-चिन्तक वा शत्रुरूप शक्ति है। असली हाल जानने की चिन्ता ही सब प्रकार के अनर्थ उत्पन्न करती है। एक मृत शरीर में इतना काफ़ी विष हो सकता है कि जिस के संसर्ग से एक राष्ट्र रोग ग्रसित होजाए, परन्तु क्या इस

से मृत शरीर की महत्ता सिद्ध होती है? बहुधा कुछ मतों का स्पर्श-जन्य संचार इसी हद तक पहुँचता है।

लोग अपने लगाए हुये वृक्षों को फलते हुये देखने में तथा उनके फल खाने में बड़े ही उत्सुक रहते हैं। इस से विश्वास की कमी और स्वार्थ-परता ज्ञात होती है। हज़रत ईसा, गुरु नानक और कई अन्य महानुभावों ने अपने ही शरीरों को उन (धर्म वा पन्थ रूपी) वृक्षों की नम्र खाद बना डाला, कि जो उनके कई पीढ़ियों के पश्चात् फले।

कुछ व्याख्यान दाता पुच्छल तारों के समान अपने पीछे केवल झूठी पदवी की सुस्पष्ट पूँछ (conspicuous tail) लगाने में भारी आकांक्षी होते हैं, जिस स्थान पर कि यह भारी मेघावृत संग्रह (nebulous appendix), चाहे लम्बाई और डील डौल में कितना ही क्यों न हो, कुछ भी असली वज़न (प्रभाव) बिल्कुल नहीं रखता।

आतशबाज़ी की रोशनी झुण्ड के झुण्ड मनुष्यों को अपनी ओर खींचती है, परन्तु उस दृश्य (तमाशे) के समाप्त होते ही उस के पश्चात वहां कोई चिन्ह नहीं पाया जाता। और इस आतशबाज़ी की रोशनी में चञ्चलता पूर्वक कूदने वाले जैक (Gack) को कौन कभी सुधार सकता है? एक लगातार और स्थिर प्रकाश, चाहे वह एक तुच्छ सी मोम बत्ती का ही क्यों न हो, केवल वही वास्तव में काम देता और बरकत देता है।

अपनी आकर्षण-शक्ति के केन्द्र को अपने से बाहर न फेंको। चरित्र के लिये शुद्ध प्रेम और स्वार्थ त्याग बड़े ज़रूरी हैं; परोपकार तो केवल आकस्मिक घटना है।

As journeys the Earth, her eye on the Sun
through the heavenly spaces,

And radiant in azure, or Sunless, swallowed
in tempests,
Falters not, alters not, journeying equal sunlit
or storm-girt
So, Thou, Son of Earth, who hast force, Goal,
and time, go still onwards.

अर्थः—जिस प्रकार पृथिवी, सूर्य पर अपनी दृष्टि जमाये
आकाश मंडल में भ्रमण करती है।
और नील-गगन में उज्ज्वल, या सूर्य विहीन, वा प्रचण्ड
वायू में ग्रस्त होकर भी
न तो वह लड़खड़ाती है,न चाल बदलती है,वरन् सूर्य से
प्रकाशित या
झंझावात से आच्छादित (Storm-girt) हुई भी समान
रूप से विचरण करती है।
उसी प्रकार तू, हे पृथ्वी-पुत्र! जिस के पास कि शक्ति,
ध्येय तथा समय है, अब भी आगे बढ़ता जा।

भारत में एक कार्य्यकर्ता की किसी एक मार्ग में सेवा को उस की दूसरे मार्ग में त्रुटियों के कारण अस्वीकृत कर देने की प्रवृत्ति है। उदाहरणार्थ, एक उपदेशक के उपदेशों को इस लिये ग्रहण नहीं किया जाता कि उस के जीवन के व्यक्तिगत स्वभाव पसन्द करने योग्य नहीं है। इस प्रकार उस देश में सहयोग (cooperation) असम्भव सा हो गया है। यह प्रवृत्ति ऐसी है कि जैसे कि कोई गऊ का दूध इस लिये अस्वीकार करदे कि गौ सवारी के काम के योग्य नहीं है, और घोड़ी पर इस लिये सवार न हो कि वह दूध नहीं देती।

प्राणि-शास्त्रज्ञों (Naturalists) का स्पष्ट निरीक्षण यह दिखलाता है कि यह दौड़ "तेज़ दौड़ने वालों" के लिये नहीं और न यह संग्राम शक्तिशालियों के लिये है, वरन् उन लोगों के लिये है कि जो अपने को इकट्ठा (एकत्रित) रख सकते हैं। संपात (competition) से पहले मिलाप (संघ) होना चाहिये। मनुष्य जाति में यह संघ वा संगठन कैसे प्राप्त किया जा सकता है? कोई संघ केवल संघार्थ किया हुआ अवश्यमेव अकृत-कार्य्य होगा। हमारे शरीर के तुल्य प्राकृतिक अवयव (natural organism) अचेतन होते हैं। समस्त चिद्यायें पारस्परिक सहायता, सहयोग, एकता तथा सहकारिता का ही परिणाम हैं, किन्तु किन्हीं दो विद्वानों को साथ २ एक ही समय जीवित रहने की आवश्यकता नहीं। एक ही सत्य में दृढ़ भक्ति से विज्ञान-वादियों का संगठन होता है। समस्त संसार में बच्चों में प्रेम, खेल, और निर्दोषता का एक सामान्य व्यावहारिक धर्म है। यह एकता प्रत्येक बच्चे की अपनी प्यारी मृदु-आत्मा के साथ स्वाभाविक भक्ति (अनुरक्ति) के कारण होती है। अपने साथियों से अच्छे समझे जाने की इच्छा प्रायः चरित्र की असलीयत का बहुत नाश कर देती है। यही दंभी वा कपटी समाज की नींव (foundation) है। इस के साथ २ वह दबाव, जो कि एक मनुष्य पर दूसरे ऐसे लोगों को प्रसन्न रखने की इच्छा से पड़ता है कि जिन के स्वभाव अनियम पूर्वक और उलटे होते हैं, प्रायः मनुष्य को बहुत सी ऐसी बातों के करने की ओर ले जाता है कि जिन को वह दूसरी अवस्था में करने की इच्छा तक न करता। मद्यपान का स्वभाव प्रायः मद्य पीने वाले मित्रों के सत्कार वा सहानुभूति के कारण पड़ जाता है।

सत्य ही उपकार है। सत्य का अनुसरण ही उपकार करना है। सत्य तुम्हें दृढ़ बनाता है। सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनाता है। बाहरी सत्ता और क़ानून से स्वतन्त्रता अपने आप को नियम पूर्वक करने से ही प्राप्त की जाती है। यही पुरस्कार है। शारीरिक बल अधिकार नहीं बनाता, वरन् जो कुछ अधिकार है वह दृढ़ता से अपने आप को समर्थन करेगा, और वह दृढ़ता ही बल वा शक्ति है। जो निर्बल है, वह नाश होता है। हम भगवदाशय कोईश्वराज्ञा से ही केवल जान से हैं। 'प्रकृति की पुस्तक' में 'ईश्वर' मानो अपनी ही उँगलियों से इस प्रकार साफ़ २ बिना किसी त्रुटि के लिखता है "निर्बलता के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है," और वह निर्बलता अज्ञान से उत्पन्न होती है।

जो कुछ कि दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहता और उन्नति करता है, वह भगवदाशयानुकूल अवश्य होगा। जो कुछ दिखता है उस का अनुभव-सिद्ध सामान्यवाद (generalization) ही नियम है। प्रकृति की किताब (gospel) हमें निम्न लिखित विधान (Law) स्पष्ट करती है:—"जो कुछ कि हक़ है, शीघ्र या देर में वही बल रूप होकर अपना समर्थन आप करेगा। सत्य दुर्भेद्य है। वह बुल्बुले की नाईं छूने से ही नहीं टूट जाएगा! नहीं नहीं, तुम उसे समस्त दिन (चौगान) की नाईं ठोकरें लगाते रहो, और वह सायंकाल वैसा ही ठीक और गोल होगा। ईश्वर विश्व पर शासन कर रहा है, और शक्तिमान, नहीं २, सर्वशक्तिमान सत्य ही विजय करता है। सत्य से चकित वा भयभीत मत हो, और अपने अन्तःहृदय वा अन्तःकरण से कहो:— "अहं ब्रह्मास्मि" "मैं ईश्वर हूँ"।"

केवल वह समाज जो सत्य का अधिक प्रतिपादन करता है, 'अनन्त शक्ति' के साथ अधिक एक सुर हो कर कार्य्य करता है, और सर्वशक्तिमान को अधिक प्रकट करता है; वही सफलता और श्रेष्ठता अवश्य पाता है। सत्य का ज्ञान (बोध) शक्ति और विजय लाता है। देहाध्यास (देहाभिमान, चाहे वह ब्राह्मणपन का अभिमान वा संन्यासपन का अभिमान ही क्यों न हो) तुम्हें एक चर्मकार (वा शूद्र, चमार) बनाता है। यही चर्म-वृत्ति वा चाण्डालपन है कि जिस के विरुद्ध तुम्हें सचेत श्रुति बार बार खबरदार करती है।

एक सच्चा आत्म-संयमी (self-denynig) मनुष्य ही संन्यास के पवित्र भाव को इस चर्मवृत्ति-पुरुष के व्यापार में लगा सकता है। वह व्यापार, पेशा, या स्वयं उद्योग वा धन्धा तुम्हें शूद्र नहीं बना सकता। राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ें स्त्रियां, बच्चे, और शूद्र हैं, ज़िन सब की उचित शिक्षा और रक्षा भारत में बुरी तरह से बन्द पड़ी है। नाम मात्र के उच्च वर्ण, उत्तमता के रूप में उस वृक्ष के केवल फल हैं।

हमें वृक्ष के फलों की ही रखवाली में समस्त समय नष्ट न करना चाहिये। मूल पर ध्यान दो, उस को खाद दो और भली प्रकार सींचो।

प्यारे सुधारको! धनी लोगों की रुचियों के अधीन होने से तुम्हारी व्यक्तित्व, सम्भवतः कुछ काल के लिये उत्कृष्ट (उन्नत) हो जाय, परन्तु सत्य की वृद्धि तो दीन जातियों, बालकों और स्त्रियों तथा ऐसे ही लोगों द्वारा होगी। इतिहास यही कहता है। उपदेशकों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जब कभी सरकारी पदाधिकारी (officials) उनके व्याख्यान सुनने आते हैं, तो वे अपनी श्लाघा करने लगते हैं। अच्छा, यह सत्य है कि सरकारी नौकर आज कल शेष

मनुष्यों से कुछ अधिक समझदार होते हैं, और कुछ काम भी दे सकते हैं, किन्तु राष्ट्र के उत्थान की आशा उनके द्वारा नहीं की जा सकती। जिन लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता कौड़ियों में बेच दी है, (चाहे उसे बड़ा वेतन कह लो), आज कल के नित्य कर्म की आवश्यक बुराई से जिन की जीवन-शक्ति नष्ट हो चुकी है, जिन का (बल) अत्यन्त कार्य्य भार से चूस लिया गया है, इन माननीय पाषाण-ठाकुरों को-अपने माननीय बन्धन और भारी असहायता के सिंहासन पर से-चापलूसी की प्रसिद्ध मोहिनीयों के रागों, शान्तिकर लोरियों और अपने नौकरों की सेवा-पूजा से आनन्द लूटने दो, किन्तु वास्तविक सुधार वा पुनरुत्थान उस क्षुद्र मूल मात्र ही के साथ प्रारम्भ होगा।

भारत वर्ष की नित्य इतनी हलचलों के असफल होने का मुख्य कारण यह हुआ है कि कार्य्य कर्ताओं ने अपनी शक्तियों को फलों और पत्तियों (कुलोत्कर्ष वा कुलीन वर्ग) को सींचने में ही व्यर्थ व्यय किया। बेचारे शूद्रों को प्रकाश (विद्या) और जीवन की आवश्यकता है। लोग तुम्हें उन तुच्छ दीन लोगों (जैसा कि नीच जाति के लोग समझे जाते हैं) की ओर ध्यान करने से झिड़केंगे। परन्तु याद रक्खो कि यह शून्य भी मूल्य को दस गुणा अधिक कर सकता है यदि उसे एक अर्थ पूर्ण संख्या १ की दाहिनी ओर रक्खा जाय। अपने १ को ठीक तरह से (दक्षिण ओर से) शून्य के साथ एकत्व प्राप्त करने दो। तत्-त्वम्-असि, वह तू ही है।

कुछ लोग कहते हैं कि 'स्त्रियाँ, बालक, और शूद्र' अधिकारी (ब्रह्मविद्या के पात्र) नहीं हैं'। यह ठीक वही विचार है जिसने वेदान्त को एक महान किन्तु सन्देहजनक सिद्धान्त

बना रक्खा है, जो कि केवल सिद्धान्त है, वास्तविकता नहीं है।

यदि प्रत्येक बालक सूर्य्य के प्रकाश और वायु का अधिकारी है, तो, वह आध्यात्मिक प्रकाश और वायु का अधिकारी क्यों नहीं है? ब्रह्मविद्या का द्वार किसी के लिये भी क्यों बंद करते हो? इन अज्ञान तथा निर्बलता की भूमितल की कोठरियों (under-ground cells) और बन्द कमरों को नाश करो। दैवी-प्रकाश और वायु को सब का कल्याण करने दो।

लोगों को नीति-उपदेश वा सदाचार की आज्ञाएं देने से आध्यात्मिक दरिद्रता उत्पन्न होती है। मूढ़ आचारोपदेशक अपने आप को तथा दूसरों को तत्त्वज्ञान से व्युत्पन्न करने के स्थान पर सदाचार (सद्गुणों) के रूपों पर ज़ोर देते हैं और इससे अपने ही उद्देश्य को खो बैठते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने भीतरी प्रकाश वा ज्ञान का सच्चा विश्वासी है। कोई भी अपने सम्मुख कूप देख कर उस में पैर न धरेगा। 'यह करो', 'यह न करो', हमारा यह सब विधि-निषेद्द, मनुष्य में पशुत्व (पशुवृत्ति) को ही भले लगते हैं। जब हम एक बालक वा बालिका से भी कहते हैं "तुझे यह वा वह करना होगा", तब उस बालक या बालिका में चिच्छक्ति अपमानित और उपेक्षित होने के कारण उस (विधि-निषेध) से रुष्ट होती उस का उल्लंघन करती है। हमारी अवश्य कर्त्तव्य रूप शास्त्र-आज्ञाएं घोड़े (पशु-प्रवृत्ति) को अपने सवार (चिच्छक्ति) के तले से निकाल लेने के समान हैं। हम बच्चों को उनके ऊपर उन्हीं की समझ के अतिरिक्त और किसी प्रमाण वा शक्ति द्वारा शासन करने का प्रयत्न करके

उन्हें विद्रोह-वृत्ति सिखाते हैं। जहाँ ज़बरदस्ती से प्रवृत्त-शासन विद्रोह नहीं उत्पन्न करता, वहाँ वह अवनति और मृत्यु उत्पन्न करता है। मनो-विज्ञान (अध्यात्म-शास्त्र) (Psychology) के एक सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की साधारण दशा में संकेत (वक्रोक्ति) जितना टेढ़े रूप से वर्ता जाता है, उतना ही अधिक उस का प्रभाव पड़ता है। हमारी बाध्य करनेवाली धार्मिक-शिक्षाओं से साधारण मनुष्य स्वभाव से ही (उस शिक्षा के) विरोधी भाव को पकड़ लेता है। किसी वस्तु की इच्छा (उस वस्तु के) निषेध या निन्दा से अधिक हो जाती है (कम नहीं होती)।

आजकल की प्रथा है कि लोग ईश्वर तक को भी छोड़ नहीं सकते और यह चाहते हैं कि ईश्वर उनकी अमूल्य परिच्छिन्नात्मा की सेवा के लिये हाज़िर रहा करे और उन्हें दैनिक या मासिक जीविका दिया करे। कोई गुप्त-शक्ति (mystic power का ग्राहक एक वार एक धर्म के व्यापारी के पास गया और उस माननीय सिद्ध पुरुष (या पीर) से प्रार्थना की कि वह कोई ऐसा दिव्य सूत्र वा मंत्र सिखावे कि जिसको जपने से वह अपने हृदय के सर्व प्रिय लौकिक ध्येय को प्राप्त कर सके। उस फ़क़ीर (सिद्ध) ने मन्त्र तो बतलाया, किन्तु उसके फलीभूत होने के लिये एक विचित्र शर्त बीच में डाल दी:-"नियत समय तक जब तक कि तुम मन्त्र का जाप करो, अपने चित्त में किसी बन्दर का ध्यान मत आने देना"। दूसरे दिन वह बेचारा गुरू जी के पास यह शिकायत करने आया:-"भगवन्! यदि आप मुझे बन्दर के विरुद्ध सूचित न करते, तो मुझे बन्दर का ध्यान कभी न आता, किन्तु अब बन्दर का ध्यान मुझे बन्दर की ही पकड़ के सामन पकड़े

रहता है, मैं उसे दूर नहीं कर सकता"। इसी भाँति अपवित्रता और अन्य पाप संसार को कभी के छोड़ गए होते, यदि हमारे भाग्यवान् शिक्षक सदैव उनकी निन्दा पर ज़ोर दे दे कर उन्हें जारी न रखते। आदम (Adam), ग़रीब आदम को अदन (Eden) के विशाल शानदार बाग के एक छिपे (वा त्यक्त) कोने में किसी वृक्ष विशेष के फल खाने का ख्याल कभी भी न आता, यदि बाइबल के ईश्वर (Biblical God) ने उसका 'निषेध' करके उसे विशेषता न दे दी होती।

सुधार के नाम की ओट में हम अपनी आज्ञा पूर्ण शिक्षाओं को अत्यन्त शिखर पर ले जाते हैं। एक बच्चे से जब उस का नाम पूछा गया, तो उस ने उत्तर दिया, कि "मां, मुझे सदैव डोंट (don't=मत कर) कहा करती है, इस लिये अवश्य यही मेरा नाम होगा।" इसी प्रकार मनुष्यों ने अपनी वास्तविक आत्मा नियमों और आज्ञाओं के बोझ के नीचे खो दी है, और वे अपने आप को केवल नाम और रूप (शरीर) समझते हैं।

भारत में असली वेदान्त, पुस्तकों द्वारा नहीं, वरन् स्वास्थ्य द्वारा प्रारम्भ करने की आवश्यकता है। वेदान्त रोगाभाव वा स्वास्थ्य है, अर्थात् शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य। केवल जुकाम, ज्वर, खांसी, दमा आदि ही नहीं, वरन् डाह, आलस्य, चिड़चिड़ापन, मलिन विचार निर्बलता और अपवित्रता के अन्य सब रूप, उदर की निरोगता प्राप्त होने से तुरन्त धुल जाते हैं।

ज़रूरत की ठीक ठीक क़दर ही सच्ची स्वतन्त्रता है। मैं वही ज़रूरत हूं, और वही ज़रूरत होने के कारण स्वतन्त्र हूँ। वास्तविक स्वास्थ्य मुझे जानने में है। जब तक मुझे

नहीं तुम पाते, तब तक तुम्हारा यह नाम मात्र का स्वास्थ्य केवल गन्दे रोग का सुन्दर परदा है। स्वास्थ्य, पूर्णता, पवित्रता आदि शब्द सब एक ही प्रकार के हैं। ऐक्य का अनुभव करना ही स्वास्थ्य है। उस एक्य में जीवन व्यतीत करो और संसार की किसी भी वस्तु के महत्व से घबरा कर चकित मत हो जाओ। जो कुछ तुम्हें कहना है वही कहो, न कि जो कुछ कहना चाहिये उसे कहो। जीवन के प्रश्न तो विना हल किये नहीं रह सकते, क्योंकि जीवन स्वयं प्रश्नों का हल है। स्वास्थ्य को अपने आप स्वतः प्रकट होने दो, कोई कुटिल भाव (वा प्रयोजन) मन में मत टिकने दो। अनुचित अधिकार वा सम्पत्ति, जिस को तुरन्त त्याग देना चाहिये, वह मनुष्य के प्रयोजन हैं। 'सीधे देखो':- इस का यह अर्थ है कि जिस प्रकार निर्भय होकर, विना किसी शंका के, बच्चे की नाईं उन में किसी व्यक्तित्व को न डाल कर, उन में किसी पर-पुरुष (अजनवी) को नहीं किन्तु निजात्मा को देख कर तुम वृक्षों और नदियों की ओर देखते हो, ठीक वैसे ही उत्साह के साथ तुम प्रत्येक वा हर किसी व्यक्ति को देखो। बच्चे जो कि जीवन को खेल कर व्यतीत करते हैं, उस के नियमों और सम्बन्धों को उन मनुष्यों से अधिक स्पष्ट पहचानते हैं जो यह समझते हैं कि वे अनुभव द्वारा अर्थात असफल होकर, बच्चों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हो गए हैं। यदि तुम विना झिझक के बिच्छू घास (nettle) को भी पकड़ लो, तो वह तुम्हें हानि न पहुँचाएगा, किन्तु यदि तुम से केवल वह छू लिया गया, तो समस्त शरीर की त्वचा में जलन और परेशानी उत्पन्न कर देगा। बहुत से अच्छे कार्य्य-कर्ता ऐसे हैं कि जिनकी एकान्त में बात चीत बहुधा भेदियों (वा सिपाहियों के चतुरता भरे सन्देह) और

गुप्तचरों (वा डीटैक्टिवों के बुद्धिमता पूर्वक भय) से पूर्ण है। ये योग्य सुधारक, मैं कह सकता हूँ, स्वयं चोर हैं। प्यारे गुप्त चरों! प्रिय भेदियों! तुम्हारा मैं पूर्ण स्वागत करता हूँ, मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। मैं तुम्हें तुम्हारे पुराने वेतन से (यदि कोई हो) कहीं अधिक वेतन दूँगा। कृपा करके मुझे पकड़ो,। मैं विनय करता हूँ कि ज़रूर मेरे भेद देखो, और जो कुछ मेरे पास है, वह सब तुम्हें देकर मुझे आनन्द होगा, मैं तुम्हारी समस्त इच्छाएं विचित्र भांति से पूर्ण करूंगा, तुम्हारी समस्त ज़रूरतें दूर कर दी जाएँगी; तुम और दुःख नहीं भोगने पाओगे, तुम्हारी दरिद्र वा निर्धन दशा बह जायगी, तुम सब राज्यों को अपने चरणों में पाओगे। अपने भेद का खोज लगानेवाले हृदय को आशिर्वाद दो-आओ।

स्वास्थ्य की आवश्यकता-पूर्त्ति के लिये ही प्रत्येक निरोगी मनुष्य को अवश्य कर्म करते रहना चाहिये। बच्चे का कोई उद्देश्य वा प्रयोजन नहीं होता; किन्तु तब भी वह पृथ्वी पर के अत्यन्त उद्योगी वा कार्य्य-परायण जीवों में से है। वेदान्त तुम से यह चाहता है कि तुम कठिन श्रम करो, अपना कर्तव्य वीरों की नाई पालन करो, परन्तु किसी घटना पर अपने आनन्द को निर्भर न करो, प्रत्येक प्रयत्न आनन्द से प्रेरित और उत्तेजित हो कर ही हो। और वृथा आनन्द के लक्ष्य से ही सदा न हो।

तुम जो कि अकेले सत्य पर आरूढ़ हो, इस बात से मत डरो कि बहुत संख्या तुम्हारे विरुद्ध है। नहीं। कट्टर अज्ञान की यह दिखाव मात्र की भारी संख्या प्रातःकाल के ओस-कणों की सेनाओं की भाँति है जो ताज़ी पत्तियों और

घास के हरे अंकुरों पर पड़ते हैं। यह नाशवान् बहु संख्या, ऐ सूर्य्य ! केवल तुम्हारा स्वागत करने के लिये चमक रही है। साथ के साथ अपना तदात्मक सम्बन्ध कर दो, इस से क्या होता है यदि लाखों में से मुट्ठी भर लोग तुम्हारा विरोध करते हैं, बहुत संख्या अब भी तुम्हारी ओर है। चट्टानें, वृक्ष, नदियां, वायु, सूर्य्य और तारे सब तुम्हारे साथ हैं। काल तुम्हारे साथ है। दिन तुम्हारा है, शताब्दियां तुम्हारी हैं। अनादि काल तुम्हारा है। सर्व व्यापक प्रकृति तुम्हारे साथ है। तुम विरोधियों को घेरे हुये हो, उन से घिरे हुए नहीं हो। अवसर को तुम घेर कर उसे क़ैदी वा दास बना लो।

———:o:———

आवश्यकता है।

सुधारकों की,
दूसरों के नहीं, किन्तु अपने निज के,
विश्वविद्यालय के उपाधि-धारियों की नहीं,
किन्तु अहंभाव के विजेताओं की।
आयुः-दिव्यानन्द भरा तारुण्य
वेतनः-ईश्वरत्व
शीघ्र निवेदन करो:—
विश्व नियन्ता से
अर्थात् अपने ही आत्मा से,
दासोऽहं भरी दीनता से नहीं
किन्तु निश्चयात्मक अधिकार से
ओ३म्! ओ३म्! ओ३म्! ओ३म्

———o———

अरण्य-सम्वाद।

(संख्या ४)

कहानियां

ईश्वर को तुम अपने भीतर से काम करने दो और फिर इससे अधिक कर्तव्य तुम्हारे लिये बाकी न रहेगा। ईश्वर को स्वयं प्रकाशित होने दो। ईश्वर को स्वयं स्पष्ट होने दो। ईश्वर ही बन कर रहो, ईश्वर होकर खाओ, ईश्वर होकर पीयो, और ईश्वर ही होकर साँस लो। तुम सत्य का अनुभव करो, और दूसरी वस्तुएँ अपनी रक्षा आप कर लेंगी। स्वर्गीय राज्य जो तुम्हीं में है, और जो तुम ही हो, तुम स्वयं बन कर रहो। सब दूसरी वस्तुएँ तुम में स्वतः संयुक्त हो जाती हैं।

लार्ड बायरन (१)

उसने स्वतन्त्रता के भाव को अपने भीतर से खूब प्रकट होने दिया। जब वह विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था, जिस कक्षा में वह था, उस कक्षा से एक परीक्षा में निम्न लिखित विषय पर निबन्ध लिखने को कहा गया :—"ईसा से विवाह के भोजन (wedding feast) समय जल का अद्भुत रूप से मदिरा में बदल जाना।" आह, किस प्रकार उन परीक्षार्थियों में से कुछ ने परिश्रम किया! नियत समय में उनमें से कुछ ने लम्बी २ दास्तानें लिख मारीं कि "किस प्रकार मेहमान लोग वस्त्र पहने हुए थे," "भोजन किस भाँति रक्खा गया," "उस समय ईसा ने कैसे देखा," इत्यादि, इसी प्रकार वे उस विषय पर विस्तार करते गए। इस सारे समय में बायरन (Byron) छत की ओर देखते हुए, अन्य विद्यार्थियों के

मुखों की ओर ताकते (ध्यान करते) हुए और बहुत समीप सीटी बजाते हुए अपनी जगह पर बैठे रहा। जब समय समाप्त हो गया, अध्यापक निबन्ध की कापियां जमा करने आया; और यों ही वह बायरन के निकट पहुँचा, तो उसने हँसी में कहा, "तुम अवश्य थक गए होगे, क्योंकि तुम इतने श्रम से लिख रहे थे", और आशा की कि बायरन सादी कापी ही लौटा देगा। किन्तु बायरन ने कहा, "एक मिनट ठहरिये", और चट पट एक पंक्ति घसीट कर लिख मारी और अध्यापक को कापी दे दी। प्रायः तीन सप्ताह पश्चात् परिणाम (result) घोषित किया गया, और कुछ निबन्ध सादर वर्णन किये गए; किन्तु सब को यह जान कर कितना अधिक आश्चर्य्य हुआ कि बायरन प्रथम पुरस्कार जीत ले गया। बायरन के निबन्ध की उत्तमता पर अन्य विद्यार्थियों को विश्वास दिलाने के लिये अध्यापक ने उसे कक्षा में पढ़ा; निम्न लिखित पंक्ति ही सम्पूर्ण निबन्ध थी; "जल ने अपने (मालिक) को देखा, और मारे लज्जा के उस का रङ्ग लाल हो गया।" अथवा "जल ने अपने प्रभु को देखा और वह प्रफुल्लित होकर लाल रंग का होगया।" उस ने परिश्रम करके कुछ नहीं लिखा। यह छोटी सी पंक्ति स्वतः प्रवर्तित (अपने आप निकली हुई) थी, और समस्त स्वाभाविक रचनाओं की नाईं पूर्ण, स्वतन्त्र, सुन्दर, कवितामय और निज आत्म का कार्य्य थी।

"The eye—it cannot choose but see,
We cannot bid the ear to be still ;
Our bodies feel were'r they be
Against or with our will.

Think you, 'mid all this mighty sum
Of things for ever speaking
That nothing of itself will come
But we must still be seeking?"

अर्थः-नेत्रको देखने के अतिरिक्त और कोई उपाय (इलाज) नहीं।
हम कान को श्रवण-हीन नहीं बना सकते।
हमारे शरीर, जहां भी कहीं हों,
हमारी इच्छा के अनुकूल वा प्रतिकूल भान अवश्य करते हैं।

* * * *

क्या आप का विचार ऐसा है कि इस
नित्य भान वा होने वाली चेतन स्वरूप। वस्तुओं के महा संग्रह में से
कोई भी वस्तु स्वतः प्रकट वा प्राप्त न होगी?
और हम को सर्वदा खोजते ही रहना पड़ेगा?

(वर्डस्वर्थ)

—o—

उस्ताद बजैय्या।
2. (Master Musician).

किसी गिरजा घर में एक सुन्दर आर्गन बाजा था, वास्तव में वह बाजा ऐसा बढ़िया था कि उसका संरक्षक किसी शौकीन मनुष्य को उसे छूने तक न देता था। एक दिन, जब कि गिरजे में प्रार्थना (Service) हो रही थी, एक दीन अनजान मनुष्यों की नाईं वस्त्र पहने अन्दर आया और बाजा बजाना चाहा, परन्तु उसके पास तक भी जाने की आज्ञा न मिली। पादरी साहब उसे न जानते थे, और क्योंकि यह एक अत्यन्त प्रिय वस्तु थी जिस से वे निःसन्देह उसको बजाने न देते थे। ज्यों ही प्रार्थना समाप्त हुई और

बजाने वाले ने उसे छोड़ा, वोंही यह मनुष्य चुपके से वाजे के पास चला गया। जिस क्षण उसने वाजे पर अपने हाथ रक्खे, वाजे ने अपने उस्ताद को पहचान लिया और (उसने) ऐसा सुर निकाला कि यद्यपि एकत्रित लोग सब उठ खड़े हुए थे और सब जाने को तैयार थे, तथापि जब ऐसी महत्व पूर्ण ध्वनि निकली, तो उसी क्षण वे लोग विवश हुए मुग्ध खड़े रह गए और गिरजा घर छोड़ न सके। यह आश्चर्य जनक ताल सुर निकालने वाला स्वयं वजैय्यों का उस्ताद और अर्गन वाजे का कर्त्ता ही था।

हम निजात्मा ईश्वर तथा प्रेम स्वरूप को अपने लिये कार्य्य करने का अवसर नहीं देते; इस शरीर की और मन की ही चिन्ता हम अवश्य करते रहते हैं, अतः यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि ऐसी दशा में केवल साधारण सुर ही हम से निकलतते हैं। मालिक (उस्ताद) को बाजा वजाने दो, और जिस क्षण प्यारे के हाथ तारों को छुवेंगे, उसी क्षण ऐसा सुर निकलेगा कि तुम ने पहले स्वप्न में भी न सुना होगा, आश्चर्य्यजनक प्रकाश और ताल स्वतः बहने लगेगा, दिव्य आलाप (सुर) अपने आप निकलने लग पड़ेंगे। स्वर्गीय तानें वा असंबद्ध कविताएं (rhapsodies) स्वतः प्रकट हो जायंगी।

"God of the granite and the rose,
Soul of the sparrow and the bee,
The mighty tide of being flows
Through all its channels, Love, from Thee

"It springs to life in grass flowers,
Through every thread of being runs

Till from creation's radiant towers
 In glory flames, in stars and suns,
" God of the granite and the rose,
 Soul of the sparrow and the bee,
The mighty tide of being flows
 Through all its channels back to Thee
" Thus round and round the current runs
 A mighty sea without a shore
Till man with angels, stars and suns
 Unite in love for ever more."

(Lizzie Doben)

अर्थः – ऐ पुष्प और पाषाण के ईश !
ऐ पक्षी और कीट-पतंग के आत्मा !
ऐ प्रेम स्वरूप ! यह अस्तित्व की महान लहर
नाना मार्गों द्वारा तुझ ही से निकल कर बह रही है।

घास पात में यह जीवन बन कर निकलती है,
और प्राणी की रग रग में होकर दौड़ती है,
यहां तक कि सृष्टि के दीप्तमान मीनारों से लेकर
तारों और सूर्यों तक अपने तेज में प्रकाशित होती है।

ऐ पुष्प और पाषाण के ईश !
ऐ पक्षी और कीट-पतङ्ग के आत्मा !
ऐ प्रेम स्वरूप ! यह अस्तित्व की महान लहर
नाना मार्गों द्वारा हो कर तुझही में पुनः आ मिलती है।

इस प्रकार बारम्बार यह लहर
तटहीन महान सागर में बहती है

यहां तक कि मनुष्य, देवता, तारे और सूर्य
सब एक प्रेम-सागर में नित्य के लिये मिल जाते हैं।
(लिजी डोवेने)

—— o ——

यमराज से चाल (३)

किसी समय एक ऐसा चतुर मनुष्य था कि जो अपना वेष इस प्रकार पूर्ण रूप से बदल लेता था कि तुम असली से बनावटी रूप को पहचान नहीं सकते थे। वह जानता था कि यमराज का दूत उस के लिये आ रहा है, और जब वह यह ठीक न जान सका कि दूत से बचने के लिये क्या करना चाहिये, तो अन्त में उसने एक ऐसा निश्चय किया कि जो एक चतुरता भरी तदबीर कही जा सकती थी। उसने अपने को बारह बार रच लिया अर्थात् उस ने अपने एक दर्जन रूप धारण कर लिये। जब यमदूत आया, वह यह न जान सका कि वास्तविक-व्यक्ति कौन है; अतः वह किसी को न ले गया। दूत ईश्वर के पास लौट गया और पूछा कि क्या करना चाहिये, और कुछ सलाह करके वह पृथ्वी पर लौट आया और इस मनुष्य को लेजाने का फिर प्रयत्न करने लगा। वह बोलाः—"प्रियवर! तुम बहुत ही भारी चतुर हो, क्यों? वह जिस प्रकार से तुम ने इन आकृतियों को बनाया है उस का तरीका ठीक यही है, किन्तु एक बात ऐसी है जिसमें तुमने भूल की है, बस एक ही त्रुटि है"। असली मनुष्य चट उछल पड़ा और तुरन्त पूछा "किस बात में? किस बात में मैं ने भूल की है? और दूत ने कहा, "ठीक इसी में"। मूक मूर्तियों में से उस चतुर मनुष्य को निकाल लिया। केवल इतना पूछना कि "मैं क्या ठीक हूं"? गलती है। प्रियवर! इससे

अधिक और तुम क्या हो सकते थे ? कर्त्ता भाव का यह छोटा सा भूत मृत्यु रूप यमराज से पकड़ लिया गया।

—— o ——

यह मेरी गाजर है (४)

दुर्भिक्ष काल में एक गरीब स्त्री मर गई। यमराज उसके विषय उसकी मरणोत्तर तफ़तीश करने लगा। उसके अच्छे और बुरे कर्मों को छाँटते हुये इसके अतिरिक्त और कोई पुण्य कर्म वह न पा सका कि उस स्त्री ने एक वार एक भूखों मरते हुए भिखारी को एक गाजर (या मूली, मुझे ठीक २ ज्ञात नहीं है) दी थी। न्याय-कर्ता (यमराज) की आज्ञानुसार वह गाजर मँगाई गई। यही गाजर उस को स्वर्ग ले जाने वाली थी। उस ने गाजर पकड़ ली और गाजर उस को साथ २ उठाती हुई ऊपर उठने लगी।

तब वह बूढ़ा भिखारी भी उस दृश्य में दिखाई पड़ा। उस ने उस स्त्री के फटे कपड़ों के सिरे को चिमट कर पकड़ लिया, उसी के साथ २ वह भी ऊपर चढ़ने लगा; एक तीसरा दयाप्रार्थी भी उस भिखारी के चरण पकड़ उसी प्रकार ऊपर उठने लगा; नहीं, नहीं, इसी भाँति एक दूसरे के नीचे होकर लोगों की एक लम्बी पाँति वा पंक्ति हो गई जो ऊपर उठाने वाली इस गाजर के सहारे उठने लगी। और यह कहते आश्चर्य्य होता है कि स्त्री ने अपने साथ लटकती हुई इन सारी आत्माओं का बोझ भान न किया। (क्या ऐसी बातें प्रायः स्वप्न में नहीं दिखाई देतीं ?)

यह उद्धार किये हुये मुक्त पुरुष या रक्षित लोग ऊपर ही ऊपर उठते गए, यहां तक कि वे स्वर्ग द्वार पहुँच गये।

यहां स्त्री ने नीचे देखा, न जाने किस भाव ने उसे विचलित कर दिया, कि उसने अपने पीछे लगे हुए साथियों से कहा।

"अरे! दूर हो जाओ!
यह गाजर मेरी है!"

और विना विचार किये उन्हें दूर करने के लिये अपना हाथ हिलाया। गाजर अन्तर्ध्यान हो गई, अर्थात् नीचे गिर गई, और बेचारी स्त्री उस समस्त पाँत के साथ नीचे गिर पड़ी।

सत्य बातें साफ़ २ वर्णन कर दी गई हैं, इससे तुम अपने आप को धार्मिक बना सकते हो।

—:*:—

Equality (V)

The mountain and the squirrel
Had a quarrel,
And the former called the latter "Little Brig."
Bun replied.
"You are doubtless very big,
But all sorts of things and weather
Must be taken in together.
To make up a year
And a sphere."

"And I think it no disgrace
To occupy my place
If I'm not as large as you,
You are not so small as I,

And not half so spry,
I'll not deny you make
A very pretty squirrel track.
Talents differ ; all's well and wisely put."

"If I cannot carry forests on my back
Neither can you crack a nut."

समानता (५)

अर्थः—पर्वत और गिलहरी का
एक समय परस्पर वाद विवाद हुआ।
पर्वत ने गिलहरी को कहा,"ऐ छोटी पिद्दी (Little Brig)!"
किन्तु गिलहारी ने उत्तर दिया :—
"तुम निःसन्देह बहुत बड़े हो,
परन्तु सब प्रकार की वस्तुओं और ऋतुओं
से मिलकर ही
वर्षकाल और संसार मंडल बनते हैं।

और मैं अपने स्थान पर रहने में
कोई अपमान नहीं समझती।
यदि मैं तुम्हारे समान बड़ी नहीं हूं,
तो तुम भी मेरे समान छोटे नहीं हो,
और मेरे समान आधे भी तेज़ नहीं हो,
मैं इस बात से इन्कार नहीं करती कि
तुम्हारे में गिलहरी के लिये एक अच्छी पगडण्डी बन
जाती है।

योग्यताएं भिन्न २ हैं, सब अपने २ स्थान में ठीक हैं,
और बुद्धिमानी से रची गई हैं।

यदि मैं अपनी पीठ पर जंगल नहीं उठा सकती,
तो तुम भी (मेरे समान) एक सुपारी नहीं फोड़ सकते।

प्रश्न—स्वामी जी, आप कहते हैं कि हमारी आत्मा ज्ञान स्वरूप है, अतः कृपया दिव्यदृष्टि संबंधी कोई ऐसी तरकीब वेदान्त की बताइये कि जिस से मैं इस आगामी क़ानून की परीक्षा (Law examination) में सर्वोत्तम पुरस्कार को विना पुस्तकें अध्ययन किये प्राप्त कर सकूं।"

उत्तरः—एक राजकुमार शिष्ट-जनों वा अमीरों (noble men) के बालकों के साथ अपने बचपन में लुका-छिपी (छिप्पन्न लुक्कन) खेल रहा था। उसे बालकों को ढूँढने में बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। अपने पास खड़े होने वाले किसी ने कहाः—"इन साथियों को ढूँढने में व्यर्थ इतना श्रम करने से क्या लाभ, कि जिनको तुम अपनी राजकुमार वाली सत्ता को काम में लाकर तुरन्त बुला सकते हो?" राज कुमार ने उत्तर दियाः—"ऐसी दशा में खेल का आनन्द जाता रहेगा, खेल में कोई दिलचस्पी शेष न रहेगी।" ठीक इस प्रकार, वास्तव में, तुम ही परम शासक (नियंता), सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी ईश्वर हो, किन्तु तुम ने खेल वा हंसी में अपने ही विषयों (संसार के भारी लुका-छिपी के दुस्तर मार्ग में सर्व प्रकार का अध्ययन और अन्वेषण) की खोज को प्रारम्भ किया है, अतः यह उचित न होगा कि तुम उस शक्ति का प्रयोग करो कि जिस से समस्त खेल निरानन्द हो जाय। उस स्थल पर जहाँ भूत, भविष्य, वर्तमान तथा सहस्रों सूर्य्य

और तारागण तुम्हारी अपनी आत्मा बन जाते हैं, नहीं नहीं, सब वस्तुएँ तुम्हारे ज्ञान रूपी महासागर की लहरें और हिलोरें बन जाती हैं, तुम इस क़ानूनी-परीक्षा (Law-examination) और संसारी सफलता की परवाह कैसे कर सकते हो? यदि तुम दिव्य-दृष्टि पाना चाहते हो, तो तुम इन्द्रियों के क्षेत्र को त्याग दो, या इस क्षेत्र से ऊपर उठ जाओ, जिसके द्वारा और जिसके लिये तुम वह दिव्यदृष्टि खोजते हो।

मछलियां पकड़ने के लिये एक जाल बिछाया गया था। मछलियां उस में फंस कर अपने भारी बोझ के कारण जाल को भी ले गईं। वेदान्ती दिव्य-दृष्टि वह विचित्र मत्स्य है जो आशाओं के जाल को इक दम बहा ले जाता है। फिर ज्ञान प्राप्त करने का साधारण ढंग ही वेदान्त में स्वयं दिव्य दृष्टि पाने का एक उपाय उतनी हद तक है, कि जहाँ तक अध्ययन काल अभ्यास काल) में उसे अहंकार वा द्वैत भाव से अनजाने छुटकारा मिला होता है।

एक मुसलमान संत, इमाम ग़िज़ाली के सम्बन्ध में कहा जाता है कि अपने विद्यार्थी काल में, एक रात का नित्य की नाईं बहुत परिश्रम करके वह अपने अध्ययन के कमरे में ही सो गया। स्वप्न में उसे विद्या के देवता ख्वाजा ख़िज़र के दर्शन हुए। उन्होंने केवल मुँह और कानों में फूँक मार कर ही उसे सब संसार की विद्याएं प्रदान करने को कहा। इमाम ग़िज़ाली के स्वाभिमान के गूढ़ भाव ने इसे अस्वीकार किया। उस ने इस की जगह यह वर माँगा कि आधी रात तक उसे पढ़ने के लिये तेल मिलता रहे। उसने छोटे रास्ते के स्थान पर लम्बा रास्ता अच्छा समझा। स्वर्ग के पिछले द्वार से चुरा कर जाने की परवाह न की।

'मैं दूसरों से कैसे वर्तूं', इस विषयमें तुम ईश्वरसे परामर्श मत करो। अपनी इच्छानुसार उसे (ईश्वर को) मत चलावो, वल्कि ठीक अपने आप को उस के अर्पण करो। परिच्छिन्न आत्मा का त्याग करो, झूठी अभिलाषाओं का त्याग करो, और इस प्रकार तुम अपने शरीर और मन को प्रकाश-मय बना दोगे। सम्पूर्ण शुद्ध-ज्ञान और सच्ची विद्या भीतर से निकलते हैं, पुस्तकों और वहिर्मुख मन से नहीं। अलौकिक बुद्धि वाले मनुष्यों तथा अन्वेषण-क्षेत्र में अपूर्व कार्य्य कर्त्ताओं ने अपने अविष्कार (discoveries) और अन्वेषण तभी किये जब कि वे किसी प्रकार की चिन्ता और तेज़ी से कहीं परे हट कर, अपने व्यक्तिभाव और मानसिक अवस्था को स्वार्थ परता के भावों से स्वतन्त्र करके, ज्ञान-स्वरूप में लीन थे। उन्हों ने अपने आप को पारदर्शी बना लिया था, जिस से ज्ञान का प्रकाश उन के भीतर से चमका, उन्हों ने पुस्तकों पर प्रकाश डाला, पुस्तकालयों को शोभायमान किया। यह कर्म है। कर्म से राम का अभिप्राय केवल थकित करने वाले श्रम से नहीं। वेदान्त में सदैव कर्म का अर्थ वास्तविक आत्मा के साथ एक ताल होकर हरकत करना और विश्व के साथ एकता का राग अलापना है। एक ही तत्त्व के साथ यह निस्स्वार्थ संयोग, जो कि एक मात्र वास्तव में कर्म है, प्रायः अकर्मण्यता और आलस्य के नाम सें कहा जाता और वदनाम किया जाता है। एक अति श्रम पूर्ण कर्म भी जब वेदान्त के भाव से किया जाता है, तो वह सभी आनन्द और खेल मात्र जान पड़ता है, शारीरिक क्लेश या भार नहीं। वेदान्त-शिक्षा का सारांश यही है:-"कुछ करने की चिन्ता न रखते हुए भी सदैव कार्य्य परायण रहो"। ऐ आनन्द मय कार्य्य कर्ता! जब तुम सफलता की खोज त्याग

दोगे, सफलता तुम्हें अवश्य खोजती फिरेगी।

—— :-*-: ——

To Vayu (Breeze).

" Naught stirred around,
Yet hark to that sound,
" Swoo—00" and " Ai-yu!"
Oh, bodiless Vayu !
Pause and come hither
And whisper us whither
Thou speedest along ?
Invisible wending,
The heather tops bending,
Before us thou sweepest.
Behind us thou creepest,
By our ears rushing,
O'er our cheeks brushing,
Gliding by gholefully,
Murmuring dolefully,
Dirges of song,
With "swoo-00" and "Ai-yu!"
Oh bodiless Vayu !
Pause and come hither
And whisper us whither
Thou speedest along ?"

अर्थः- वायु के प्रति

हल चल तो कहीं कुछ नहीं है,
फिर भी सुनो वह क्या ध्वनि है:—

"स्वू-ऊ" और "आय-यू"
ऐ शरीर रहित वायू !
ठहर और इधर आ,
और हमें कान में सुनाती जा,
कि तू किधर वेग से वह रही है ?
अदृश्य चलती हुई,
और झाड़ियों के सिरों को झुकाती हुई,
तू हमारे सामने से रास्ता साफ करती है,
और पीछे से मन्द २ चलती है।
हमारे कानों में सरसराती हुई,
हमारी गालों को स्पर्श करती हुई,
दानव के समान उड़ती हुई,
दुःख से शोक भरे राग आलापती हुई,
"स्वू-अ" और "आय-यू" की ध्वनि करती हुई,
ऐ शरीर रहित वायू !
ठहर और इधर आ,
और हमारे कान में सुनाती जा,
कि तू किधर लपकी जा रही है ?

अरण्य-संवाद ।

संख्या (५)

" I am the origin and end
Of all this changeful universe,
There is, oh mankind, naught beyond ;
for all is strung on me alone
As are the beads upon the thread.
I am the freshness of the waters,
The splendour of the Sun and the Moon,
The essence of the Holy thought
The sound of sounds, the man in men,
I am the life of life, oh man!"

" All true devotion's centred power,
All being's seed am I, the strength,
The wisdom of the strong and wise,
Lo, those who worship me in truth,
Fulfilling in their acts my laws ;
Regarding me their aim and end,
Their hearts, oh man, dwell then in love
And I to them will always be a guide.
From out the surging flood of wrong and
migratory life."

At whose behest doth work the Intellects ?
At whose command does life subsist ?
By whom enlightened grasps the mind ?

And what enlightens ears and eyes ?

The Ear of ear, the Mind of mind.
The Speech of speech, the Life of life,
The Eye of eye, the Self of self
That eats up Pain and Death as rice.

प्रेम

अर्थः-"इस समस्त परिवर्तन शील विश्व का
मैं ही आदि और अन्त हूँ,
हे मानव जाति ! मुझ से परे और कुछ नहीं है;
क्योंकि सब केवल मुझ में ही पिरोए हुए हैं,
जैसे माला के दाने तागे में पिरोए हुए होते हैं।
जलाशयों में मैं ताज़गी हूँ,
सूर्य और चन्द्र में मैं तेज हूँ,
शुद्ध संकल्प का मैं सार हूँ,
ध्वनियों की ध्वनि, मनुष्य में मनुष्य,
हे नर ! प्राण का भी प्राण मैं हूँ" !

सम्पूर्ण सच्ची भक्ति की एकत्रित शक्ति,
समस्त अस्तित्व का कारण बीज, बलवानों में
बल और बुद्धिमानों में बुद्धि सब मैं हूँ,
देखो, जो लोग मुझे वास्तव में पूजते (वा उपासते) हैं,
जो अपने व्यवहार में मेरे नियमों का पालन करते हैं,
जो मुझे अपना ध्येय और अन्तिम लक्ष्य (वा परम
गति) समझते हैं,

हे नर ! उन्हीं के हृदय प्रेम में वास करते हैं,

और मैं उन को पाप और आवागमन के उमड़ते हुए
तूफ़ान से बचाने के लिये उन का
सदैव मार्ग-दर्शक रहूँगा।

किस की प्रेरणा से बुद्धियां काम करती हैं?
किस की आज्ञा से प्राण जीवित रहता है?
किस से प्रकाशित हुआ मन भलीभांति समझता है?
और चक्षु-श्रोत्र को कौन प्रकाशता है?

वह कान का कान, वह मन का मन है,
वह वाणी की वाणी, वह प्राण का प्राण है,
वह आँख की आँख, वह आत्मा का आत्मा है,
जो दुःख और मृत्यु को भातके समान भक्षणकर लेताहै

All is Love.

To know is to love Truth.
What is Truth? Tat Twam Asi or Love itself.

सब प्रेम ही है।

(अपने को) जानना ही सत्य से प्रेम करना है।
सत्य क्या है? तत् त्वम असि-'वह तू ही है", या प्रेम स्वयं है।

प्रेम ने अपने आप को भिन्न २ अवस्थाओं द्वारा भिन्न भिन्न रूप से प्रकट किया है, जैसे रसायन-प्रीति (affinity), संसक्ति (cohesion), गुरुत्वाकर्षण (gravitation), लालच (greed), इच्छा (desire), आकांक्षा (ambition), और लालसा (aspiration) की शक्ति। स्फुरण (vibration) की भिन्न २ पद्धतियों और अवस्थाओं में

वही प्रेम चुम्बुक-शक्ति (Magnetism), बिजली (Electricity), प्रकाश वा तेज (light), ताप (heat) और ध्वनि (sound) इत्यादि के नामों से प्रकट हुआ है; जो भौतिक परमाणुओं की युक्ततम कल्पना मात्र शक्तियों के केन्द्र हैं। तन्मात्र (पदार्थ, matter) स्वयं अन्तिम विश्लेषण (analysis) में केवल 'प्रेमघन प्रेम' में ही समाप्त होता है। समस्त विधान (Law) विभिन्नता में अभिन्नता, अनेक जातित्व में एक स्वरता (harmony in heterogeneity), नानत्व में एकत्व (unison in variety) की खोज के अतिरिक्त और कुछ भी न होते हुय, स्वयं प्रेम का एक रूपान्तर मात्र है। तुम्हारे प्रश्नकर्ता गुप्तचरों (detectives) कपटी, जासूसों, अविश्वासी वा संशययुक्त मित्रों, धमकी देने वाले शत्रुओं, विश्वास घातक साथियों में 'प्रेम' के अतिरिक्त और कोई शक्ति काम नहीं कर रही है। प्रेम के अतिरिक्त संसार को शासन कोई और सरकार नहीं करती। कारलाइल ने कहा है, "घृणा एक परिवर्तित प्रेम है," भय केवल एक संकुचि प्रेम है। नहीं तो प्रेम भय को कैसे जीत सकता? एक मनुष्य जिसके पास जंगल में हज़ार मुहरों की थैली है,वह अपने 'प्रेम-पात्र'-स्वर्ण-ही के कारण तो भय भीत है। एक स्वतन्त्र मनुष्य, जो कोई उसे मिलता है, सब का स्वागत करता है। प्रेम के एक सार भ्रमण (दौरे) का आनन्द स्वतंत्र मनुष्य ही भोगता है। प्रेम ही एक मात्र शक्ति है, इस लिये प्रेम के साथ एकता अनुभव करना ही मोक्ष और निर्वाण है, और उस परम प्रेम स्वरूप की प्राप्ति निमित ज्ञाततः वा अज्ञाततः पुरुषार्थ ही जीवन वा प्राण है, उस ध्येय को अतिशीघ्र प्राप्त होने की पद्धति (विधि) को अनुसरण करने के लिये उद्यत होना ही विद्वता है, और

उस प्रयोजन निमित्ति प्रेम की भिन्न २ शक्तियों की उचित व्यवस्था करना ही सद्गुण है।

प्रेम द्वारा विश्वासघात की नाईं न तो कई वस्तु है और न कोई विश्वासघातक ही है। किसी मनुष्य का चरित्र अविश्वासनीय (unfaithful) नहीं है। किसी मनुष्य के यहूदी, मुसल्मान, शूद्र या ब्राह्मण होने के कारण उस की शक्तियों की सम्भावना के विपय हमें अपने विचारों को संकुचित करने का कोई अधिकार नहीं है। मत मतान्तरों के पक्के दास को भी मोक्ष प्राप्त करना अवश्य है। ईश्वर अथवा सत्य तुम्हें प्रथाओं और कट्टरपने के पञ्जे से इस भाँति निकाल लेगा जैसे कृष्ण जी ने गोपियों को उन के नाम मात्र के पतियों के घरों से निकाल लिया था।

मनुष्य की असली आत्मा इस सर्वोपरि प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तुम प्रेम हो। और तुम विश्वव्यापी हो। तुम वह गुलाबों से भरी हुई डण्डी हो कि जो एक ओर तो 'लैली' के गुलाबी गालों की नाईं चमकती है, और दूसरी ओर मजनूँ के रक्त स्रावी हृदय (bleeding heart) की भाँति दिखाई देती है। इसी सत्य को व्यावहारिक जीवन में अनुभव करना ही पवित्रता है। परन्तु वह मनुष्य जो वस्तुओं की खोज में रहता है और उन्हीं के पीछे दौड़ता है, मानो कि वह उसके साथ एक नहीं है, वह अपने ईश्वर स्वरूप को द्वैत भाव में फोड़ देता है, और इसी से अपवित्र है। संकुचित रहना और दूर रहना पवित्रता नहीं है, सौन्दर्य्य से परे हटना और उस का विरोध करना पवित्रता (ब्रह्मचर्य्य) नहीं है। सच्ची पवित्रता यह है कि जहां समस्त सौन्दर्य्य मुझ में ही लीन वा सम्मिलित हैं, और मैं सब के साथ

अपनी आध्यात्मिक एकता यहां तक भान करता और भोगता हूं कि किसी से बातचीत करने या उस से मिलने के ध्यान मात्र में ही मुझे एक शोकप्रद वियोग की गंध आने लगती है।

" Speak to him, then, for He hears and
Spirit to Spirit can meet ;
Closer is He than breathing and nearer
than hands or feet.
The Sun, the Moon, ths Stars, the hills, and
the plains
Are not these, O Soul !, the visions of
Him who reigns ?"

(Tennyson)

अर्थः—"अत एव उस आत्मा से ही बोलो, क्योंकि वह
सुनता है, और आत्मा से ही आत्मा
का मिलाप हो सकता है।
प्राणों से भी वह अति निकट है, और हाथ पाँव से
भी अधिक समीप है।
यह सूर्य, चान्द, तारे, पर्वत और मैदान।
ऐ आत्मन् ! क्या यह उसी के ही आभास नहीं हैं
जो कि शासन करता है।

(टेनीसन)

" Thy voice is on the rolling air,
I hear Thee where the waters run,
Thou standest in the rising sun
And in the setting, Thou art fair,

Far off Thou art and ever nigh
I hear Thee still and I rejoice,
I prosper circled with Thy voice
I shall not lose Thee, though I die.

अर्थः— चलती वायु पर तेरी ही आवाज़ है।
जहां जल बहते हैं, वहां मैं तुझे ही सुनता हूं।
उदय और अस्त होते हुए सूर्य में तू ही विद्यमान होता है, तू सुन्दर है।
तू नित्य समीप से समीप और दूर से भी दूर है।
मैं तुझे नित्य सुनता हूं और आनन्द लेता हूं।
मैं तेरी आवाज़ से आवृत्त हुआ उन्नति करता हूं।
चाहे मैं मर जाऊं, पर मैं तुझे न छोड़ूंगा।

जो कुछ दिखता है सब अच्छा है—ईश्वर वही है जो युक्त, उचित और ठीक हो। अब संसार की गति निरन्तर अनुकूलन (adaptation) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतएव संसार भलाई के प्रवाह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जहाँ कहीं लोगों की भूत काल से अनुकूलता (adaptation to the past) (कट्टर पन), प्रत्यक्ष वर्तमान के नए अनुसरण (re-adaptation का विरोध करती है, तो वह न रुकने वाली गति-शील अनुकूलता का नियम (एक ताल वा ईश्वर) ज़ोर शोर से आँखों को चकाचूँद करने वाले दिखावे अर्थात् परिवर्तन (revolution) को अपने साथ लाता है।

हम किसी भी वस्तु का त्याग नहीं कर सकते जब तक कि हमें कोई अन्य वस्तु उस के स्थान पर न मिल जाय, उन्नति तो धीरे २ होना ही चाहिये। प्रेम और प्रीति एक दृष्टि से तो पकड़ जकड़ (आसक्ति) का एक रूप हैं,

और दूसरी दृष्टि से त्याग से कुछ कम नहीं। प्रेम एक पात्र से दूसरे पर उठता वा जाता है। प्रेम-पात्र सर्वदा बदलते रहते हैं, और विकास या विस्तार के प्रत्येक कर्म में वह बहुत से पुराने बन्धनों को तोड़ देता है। धीरे धीरे अन्त में एक ऐसा समय जाता है जब कि मनुष्य प्रेम स्वरूप के साथ ही गिरता (या प्रायः) उठता है और प्रेम-पात्र प्रत्येक और सब की आत्मा के रूप में परिवर्तित हो जाता है, और प्रेमी इस अपनी सर्वोपरिपरि आत्मा के साथ फिर बाँधा जाता, विवाहित होता वा संयुक्त होता है। इस विवाह (अर्थात् पुनः मिलाप रूपी धर्म) के पश्चात् सच्चा प्रेमी समस्त विश्व को अपने प्रेमालिंगन में और प्रत्येक वस्तु को अपनी मुट्ठी में पाता है। ऐसे मनुष्य को किस वस्तु की इच्छा हो सकती है? क्या हम उस दूल्हन की इच्छा कर सकते हैं कि जो पहले ही से हमारी भुजाओं (बाहों) में निवेश किये हुए है?

जब मनुष्य अपने निजस्वरूप (आत्मा) को ही सब कुछ वा सब में अनुभव करता है, तब वह इच्छा नहीं कर सकता, वरन् प्रत्येक वस्तु को अपनी ही वस्तु के समान भोगता है। वह अपने कार्य्य पर ध्यान देता है और उसे अच्छा वा उपकार समझता है। प्रत्येक पदार्थ उसे अकथ्य आनन्द देता है। प्रत्येक जीव, ढेले से लेकर बादल तक, छोटे से छोटे परमाणु से लेकर सूर्य्य तक, नीच रेंगने वाले जीव से लेकर दूर से दूर चमकते हुए तारे तक, सब उसे कर देते अर्थात् उस का सन्मान करते हैं. सब उस के महत्व को प्रकाशित करते हैं. सब उस की स्तुति के भजन गाते हैं और हे ईश्वर तू धन्य है, ऐसा कहते हैं। ऐसे मनुष्य से कुछ भी भिन्न नहीं है।

संसार का अति गूढ़ सम्बन्ध तुम्हारे साथ न हो। मैं दो पदार्थ अपने सम्मुख देखता हूँ, मृदु मटर और कुमारी कन्या। जब पुष्प का निरीक्षण किया गया, तो पुष्प में एक शक्ति मिली, जिस का नाम संसक्ति (cohesion) है, जो पुष्प के भिन्न भिन्न अंगों को एकत्र मिलाय रखती है, और कुछ अन्य शक्तियों को भी, जैसे गर्मी (heat), गुरुत्व (gravity) चुम्ब-कत्व (magnetism) इत्यादि। और कुँवारी कन्या में समस्त संभाव्य (imaginable) चमत्कार दबे पड़े हैं, विशेष करके उस के शरीर के उस अङ्ग वा भाग में दबे पड़े हैं कि जिसे सिर कहते हैं। यहां मैं सारे देश और काल को समस्त विश्व को आलिंगन करते पाता हूँ। सारा विश्व एक अकेले गेंद में है जिसे सिर कहते हैं। यह विश्व सिर में एक ख्याल मात्र मौजूद है। सारा विश्व इस सिर में एक ख्याल मात्र वा कल्पना मात्र है। यदि इस जगत का ख्याल वा विचार एक शिर से दूसरे शिर में न गुज़रता होता, जैसे कि गेंद एक जगह से दूसरी जगह फेंका जाता है; तो यह संसार संसार ही न होता। यह माया रूपी स्वप्न, अर्थात् संसार का ख्याल, हम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी और एक देश से दूसरे देश भेजते या फेंकते रहते हैं, और यही समस्त संसार है, यही तुम्हारा संसार, तुम्हारा विचार और तुम्हारा कर्म्म है। इस गेंद का अति गूढ़ सम्बन्ध तुम्हारे साथ न हो। यह तुम्हारा अपना सिर का गेंद या पाओं का गेंद है।

केवल त्याग ही अमरत्व को प्राप्त कराता है-और कार्य्य रूप में त्याग के अर्थ सदैव अपने आत्मा की संपूर्णता और संसार के इस गेंद पन को मानसिक दृष्टि के सम्मुख रखते हुए समस्त चिन्ता, भय, परेशानी, शीघ्रता, और मानसिक

व्यथा को दूर कर देना वा फेंक देना है। तुम्हें कोई कर्तव्य पालन नहीं करना है, तुम किसी से बँधे हुये नहीं, तुम किसी के सम्मुख उत्तरदाता नहीं, तथा तुम्हें कोई ऋण निपटाना नहीं है। अपने व्यक्तित्व को सारी समाज, सब राष्ट्रों और प्रत्येक वस्तु के विरुद्ध ज़ोर से प्रतिपादन करो। यही वेदान्त है। समाज, रीतियाँ, प्रथाएं, कानून, नियम, क़ायदे, आज्ञाएँ, छिद्रान्वेषण, समालोचनाएं आदि कभी तुम्हारी शुद्ध आत्मा को छू भी नहीं सकतीं। जल-गणित विद्या (Hydrostatics) इस बात का प्रमाण देती है कि जल की एक छोटी सी धारा वा बूँद भी समस्त समुद्रका सामना कर सकती है और भार सम्हाल सकती है। हे व्यक्ति रूप अनन्त! तू अपने पैरों पर खड़े होने का साहस कर। और तुम समस्त विश्व का भार उठा सकते हो, ऐसा भान (निश्चय) करो। भय को दूर कर चिन्ता त्यागो। घायल किये जाने योग्य परिच्छिन्न अहंकार को मिटा दो। और इस भाव से ओम का उच्चारण करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

संख्या (६)

आराम (निष्क्रियता)

जीवन की नाना भाँति की याचनाएं और अपनी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों पर के भिन्न २ दावे (माँगें) संभव है कि आप को सदैव खींचा तानी में रक्खें। यदि इन बाह्य स्थितियों को आप ऐसी छुट्टी दे दें कि वे आप को नित्य सताती रहें, तो समझ लो कि आप अपने लिये बहुत शीघ्र कब्र (वा गड्ढा) खोद रहे हैं।

इससे कैसे बचना चाहिये? राम ऐसी सफारिश नहीं करता कि आप काम से पिण्डा छुड़ाओ या नित्य कर्मों वा दैनिक कार-बार को त्याग दो, बल्कि उस का तो यह कहना है कि आप ऐसी आदत डाल लो कि जिस से बड़े भारी, कठिन और श्रमपूर्ण कामों में भी आप नित्य विश्रान्त (वा भीतर से निष्क्रिय) रहें। यह उपदेश और कुछ नहीं है केवल वेदान्तोक्त संन्यास है। इस से तुम्हें सदैव त्याग की चट्टान पर अपने आप को खड़े रखना होगा, और इस प्रकार अपने आप को इस उत्कृष्ट भूमि (श्रेष्ठ पद) पर दृढ़ता पूर्वक रखने से और जो भी काम सामने आये उस में अपने को पूर्णतया अर्पण करने से तुम कभी भी (काम से) न थकोगे, और हर एक कर्तव्य तुम्हारे लिये एक समान हो जायगा (वा हरेक कर्तव्य-पालन में आप एक समान तत्पर रहोगे)।

इसे अधिक समझाने के लिये यों कि:—काम करते समय

बीच २ में एक आध पल के खाली समय को आप इस विचार में लगा दो कि "केवल एक ही तत्त्व परमेश्वर वा मेरा अपना आप (आत्मा) है, और यह जो देह इत्यादि है, इससे मुझे कुछ भी सरोकार (संबन्ध) नहीं है। मैं केवल साक्षी हूं, मुझे कर्म के परिणाम वा फल से कुछ प्रयोजन नहीं।" इस प्रकार विचारते हुए आप अपनी आँखें बंद कर लो, अपने अंगों को ढीला छोड़ दो, शरीर को पूर्णतया विश्राम में रहने दो, और सारे विचारों के भार को अपने पर से उतार डालो, अपने कन्धों पर से विचार वा चिन्ता के भार को उतारने में जितना अधिक आप सफल होंगे, उतना ही अधिक आप अपने आप को बलवान् मान करोगे।

नसें शारीरिक शक्ति बनाय रखती हैं (या नसें देह में प्राण क़ायम रखती हैं), और विचार भी इस नाड़ी-संस्था (nervous system, नसों के चक्र) से अवलम्बित है। पाचन-क्रिया (digestive process), रुधिराभिसरण (वा रक्त-संचालन, circulation of blood) और बालों की उत्पत्ति-वृद्धि इत्यादि, ये सब इन नसों की ही क्रिया के आश्रित हैं। यदि आप का ख्याल विक्षिप्त है और सर्व प्रकार के विचारों (चिन्ताओं) से आप हैरान परेशान हैं, तो इस का अर्थ यह है कि नसों पर अत्यन्त भार है। इस भारी विचार के परिश्रम के रूप में नसों का यह कार्य एक ओर से सम्भव है लाभ-रूप हो, पर दूसरी ओर से निश्चयपूर्वक हानिरूप है। परेशानी और विक्षिप्त विचार द्वारा देह के प्राण-रक्षक अंगों (इन्द्रियों) को हानि पहुँचती है। यदि आप चाहते हैं कि आप की जीवन-शक्ति और आरोग्यता बनी रहे, और जीवन के भार को यह नाड़ीसंस्था रूपी घोड़ा सुगमता से उठा सके,

तो आप को अहंकार भरे ख्यालों को दिन प्रति दिन हलका करना चाहिये। चिन्ताभरे विचारों और फ़िक्र करने वाले ख्यालों को अपना जीवन रूपी रस चूसने मत दो। पूर्ण आरोग्यता और प्रबल प्रवृत्ति (कर्मशीलता) का रहस्य इसी में है कि आप अपने मन को नित्य हलका और प्रफुल्लित रक्खो; कभी व्याकुल, बेचैन (चंचल) और किसी भय, चिन्ता वा शोक से पस्त होने न दो।

असली शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य लोगों से, न केवल ठीक कामों वा पदार्थोंका कराना ही है बल्कि उनका उपभोग कराना भी है, न केवल परिश्रमी वा उद्योगी बनाना ही है बल्कि उद्योग से प्रेम कराना भी है।

परम आवश्यक (उपयोगी) उपदेश

द्यौ (आकाशों) का गोलार्ध (hemisphere) मेरा प्याला है, और (उस में) चमकता हुआ प्रकाश मेरी शराब (मदिरा) है।

यह मत समझो कि आप का कर्तव्य वस्त्रों का पाना, किसी का प्रेम लाभ करना, किसी को प्रसन्न करना, या इस वा उस सांसारिक उद्देश्य को प्राप्त करना है। इन सब उद्देश्यों और आशयों को दूर करो; लाभ हानि की परवाह न करते हुए और आस पास की सारी स्थितियों से स्वतंत्र रह कर अपने आप को नित्य शान्त और प्रसन्न रखना ही अपना उद्योग, धंधा, व्यापार, पेशा, वृत्ति, जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य बना लो। इस संसार में आप का परम कर्तव्य, जो आप के कन्धों पर ईश्वर ने डाला हुआ है, (आप का धार्मिक कर्तव्य) अपने आप को प्रसन्न

रखना है। आप का सामाजिक धर्म (कर्तव्य), तथा आप के पड़ोसियों की माँग (याचना) यह है कि आप अपने आप को शान्त और प्रसन्न रक्खो; घर के संवन्धियों से आप पर जिस कर्तव्य की बड़ी भारी माँग है, वह अपने आप को प्रसन्न रखना है; और आप का अपने प्रति कर्तव्य भी आप से यही चाहता है कि आप सब अवस्थाओं में अपने आप को प्रसन्न रक्खें। अपने आप से सच्चे बने रहो, और इस से इतर किसी अन्य वस्तु की परवाह मत करो। अन्य सकल वस्तुएं आप के आगे झुकने को विवश हैं। तथापि आप को इस से क्या, चाहे वस्तुएं झूकें, या न झुकें, आप तो अपने आप में प्रसन्न हैं। उदास और खिन्न चित्त होना तो धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, और निज गृह-संवन्धी अपराध है, और केवल यही एक अपराध है जो आप कर सकते हो, केवल यही एक अपराध है जो समस्त अन्य अपराधों, अधः पतन और पापों की जड़ है। निर्मलता और रागरहित शान्ति से पूर्ण हो जाओ, फिर आप देखोगे कि अपने अड़ोस पड़ोस चारों ओर के सामान स्वतः और विवश होकर वे अपनी व्यवस्था ठीक कर लेंगे। किसी धन्धे की वावत अपने को व्याकुल वा व्यग्र चित्त करना, यह आप का कर्तव्य नहीं है। अपने आप को परिपूर्ण, सम और प्रसन्न चित्त रखना ही आप का अपना पेशा और कर्तव्य मात्र है। इस से इतर और कोई कर्तव्य हमारे ऊपर नहीं, और कोई भार हमारे कन्धों पर नहीं। आप को सिवा अपने आप के और किसी की ज़िम्दारी नहीं, अर्थात् अपने से इतर और किसी के भी आप उत्तरदाता नहीं। आप यदि शान्ति और प्रसन्नता के इस परम पवित्र नियम को तोड़ोगे, तो अपने आप के घोर पापी वा अपराधी बनोगे। अन्य

लोगों को प्रातः उठते ही यह सोचने दो कि उन के सन्मुख उन का अपना कर्तव्य कमरों का झाड़ना बुहारना, दफ़तर जाना, मुँह हाथ वा कपड़े धोना, खाना पकाना, या पढ़ना लिखना और यह या वह करना है; पर जब आप प्रभात काल उठो तो नित्य अपने आप को परम आनन्द के रूप में संबोधित करो, या प्रभातकाल उठते ही परमानन्द में अपने आप को स्थित करो। एक मात्र कर्तव्य जो आप को करना है वह यही है। इस का यह अर्थ नहीं कि आप को और काम छोड़ देना है या इतर घरसम्बन्धी कार्यों की परवाह नहीं करना है। इन बातों को आप द्वितीय कोटि के (अर्थात् गौण रूप से) खेल के कार्य समझ सकते हैं। और इन कार्यों को आप ने इस लिये करना है कि आप के आध्यात्मिक स्वास्थ्य को यह ज़रूरत है कि आप कुछ न कुछ करते रहें। परन्तु कोई काम करते समय आप यह स्मरण रक्खें कि यह नाम मात्र का स्थूल वा भौतिक, वा आवश्यक काम जो हाथ में है वास्तव में नितान्त तुच्छ, अभौतिक वा अनावश्यक है। वास्तव में असली परम आवश्यक कर्तव्य आप का अपने आप को सन्तुष्ट वा प्रसन्न रखना है। विद्यार्थियो! सुनो, यदि तुम परीक्षा के भावी परिणामों के आश्रय अपने आनन्द को लटकाय रक्खोगे, और तब तक सन्देह के अन्धकार में लटकते वा झूमते रहने में सन्तोष करोगे, तो तुम कभी भी धन्य वा कृतार्थ न होगे, किन्तु कृतार्थ होने के नित्य इच्छुक वा प्रेमी ही बने रहोगे। समान अपने समान "Like comes to the like" की ओर ही आता है, अर्थात् समान वस्तु अपने समान के ही पास खिंची आती है। अपने भीतर ब्रह्मानन्द प्राप्त करो, ठीक अभी ही सफलता का आनन्द आप की ओर ज़रूर आकर्षित होगा (वा खिंचा

चला आयगा) । यह दैवी-निधान है ।

"Laugh and the world laughs with you,
Weep and you weep alone;
For this brave old earth must borrow its mirth,
It has sorrow enough of its own:
Sing and the hills will answer,
Sigh! it is lost in the air:
The echoes do bound a joyful sound,
But shrink from voicing care.

Rejoice and men will seek you,
Grieve and they turn and go:
They want full measure of all your pleasure,
But they do not want your woe.

Be glad and your friends are many,
Be sad and you lose them all.
There is none to decline your nectared wine,
But alone you must drink life's gall.

Feast, and your halls are crowded;
Fast, and the world goes by;
Succeed and give, and it helps you live,
But no one can help you die.

There is room in the halls of pleasure,
For a long and lordly train,
But one by one we must all file on,
Through the narrow aisles of pain.

Eella Wheller Wilcox.

अर्थः—आप हंसो, तो संसार आप के साथ हँसेगा,
पर रोवो, तो आप अकेले रोवोगेः
क्योंकि इस धीर पुरातन धरणी को अपना आनन्द उधार ही लेना होगा,
उस के पास अपना दुःख (तो पहिले) ही बहुत है।
आप गाओ, तो पहाड़ियां उत्तर देंगी,
पर शोक करो, तो वायु ही में लय हो जायगा;
(क्योंकि) प्रतिध्वनियां आनन्दमयी ध्वनि का तो अवश्य उत्तर देती हैं,
किन्तु चिन्ता की आवाज़ का उत्तर देने में संकोच करती हैं।
आप आनन्द मनाओ, तो लोग आप का खोज करेंगे,
पर शोक करो, तो वे (अपने २) मुँह मोड़कर चल देंगेः
(क्योंकि) वे आप के सर्व प्रकार के आनन्दों की पूरी २ मात्रा चाहते हैं,
परन्तु आप के शोक को वे नहीं चाहते।
आप खुश होवो, तो आप के बहुत से मित्र हो जाते हैं,
पर शोकाकुल होवो, तो आप उन सब को खो बैठते हैं;
आप के अमृत भरे मद्य को पान करने से कोई इन्कार ही नहीं करेगा,
परन्तु जीवन का दुःख रूपी विष आप अकेले को पीना होगा।
आप भंडारा (दावत) करो, तो आप के विशाल कमरे भर जाते हैं,
उपवास करो, तो दुन्या अपनी राह लेती है;
सफलता प्राप्त करो और दान दो, तो इस से आप को जीते रहने में सहायता मिलेगी,

परन्तु मरते समय कोई आप की सहायता नहीं कर सकता।
आनन्द के कमरों में बहुत से प्रभुत्वशाली लोगों
के लिये स्थान तो है,
पर एक एक करके हम सब को
दुःख की तंग गलियों (कूंजों) में से ही जाना होगा।
(ह्लाहीलर विलकौक्स)

"Happiness is the only good,
The time to be happy is now.
The place to be happy is here,
The way to be happy is to make others so".

अर्थः—आनन्द ही एक मात्र अच्छाई है।
आनन्द होने का समय यही है।
आनन्द होने की जगह यही है।
आनन्द होने का ढँग दूसरों को आनन्दित करना है।

उपसंहार

राम दो मुख्य बातें आप के विशेष ध्यान में लाता हैः—
(१) परिच्छिन्न-आत्मा (अहंकार) का अस्वीकार (Denial of littley self) करना।
(२) सच्ची आत्मा का स्पष्ट स्वीकार (Positive assertion of Real Self.) करना।

प्रथमः—वेदान्त के अनुसार यह (परिच्छिन्नात्मा की) अस्वीकृति ही पूर्ण विश्राम, विश्रान्ति, आराम और त्याग है। जब कभी आप समय बचा सको, तभी अपने शरीर को कुर्सी वा पलंग पर इस भाँति डाल दो कि मानो आप कभी उस भार या बोझ को उठाये ही न थे, और आप को उस

से कोई प्रयोजन न था, और वह आप से उतना ही नितान्त अपरिचित था जितना कि चट्टान का कोई टुकड़ा। बिना आप की यत्नभरी इच्छा और संकल्प के इस शरीर को आप थोड़ी देर मृतक की नाईं पड़ा रहने दो। मन को शरीर या अन्य किसी वस्तु संबन्धी फिक्र और चिन्ता से रहित होने दो। सब इच्छा, आकांक्षा या आशा को त्यागो वा उन्हें ग्रहण न करो। यही अस्वीकृति वा विश्रान्ति है। अपनी सम्पत्ति (देह इत्यादि) को आप पृथिवी पर आराम से पड़ी रहने दो, और उसे अपने हृदय पर भार न होने दो।

द्वितीयः—ईश्वरत्व। ईश्वरेच्छा को अपनी ही इच्छा बनालो। परमात्मा के आशय को अपना ही आशय समझ उस का समर्थन करो, चाहे वह आशय सुख निमित्त हो, चाहे दुःख निमित्त; अपने आप को शरीर और उस के सामान (अड़ोस पड़ोस के पदार्थ), मन और उस के प्रयोजन तथा संसार और उस की मतियों से ऊपर भान करो। अपने आप को सर्वव्यापक परमात्मा (परब्रह्म), सूर्यों का सूर्य, कारण-कार्य से ऊपर, नाम रूप जगत से ऊपर, परमानन्द से एक, व स्वतन्त्र (मुक्त) राम समझो। किसी भी सुर या सुरों में, जो आप को स्वाभाविक और स्वतः सूझ उठें, प्रणव (ॐ) को उच्चारण करो और गाओ। इस प्रकार आप की उपस्थिति से समस्त शिकायतें और रोगों के कारण आप ही आप भाग जायंगे। संसार और आप के अड़ोसी पड़ोसी ठीक वैसे ही प्रतीत होते हैं जैसे स्वाभाव वाला आप उन्हें समझते हैं। आप के हृदय पर संसार भारी न होने पाय। दिन रात इस तत्त्व पर चिन्तन करो कि संसार की समस्त मतियां और समाजें आप का अपना

संकल्प मात्र हैं और कि आप वास्तव में वह शक्ति हैं कि जिसका श्वास या केवल छाया यह समस्त जगत है। आप आरोग्यता की उच्च शिखर क्यों नहीं पाते (अर्थात् आप पूर्णतम अरोगी क्यों नहीं होते)? इस का कारण यह है कि आप अपने अत्यन्त समीपस्थ पड़ोसी परम स्वरूप (आत्मा) की अपेक्षा दूसरों के चंचल, अस्थिर, अस्पष्ट (संकीर्ण) निर्णय (राय) के आगे अधिक विनीत और नम्र होते हो (अर्थात् अपने भीतरतम स्थित परम-आत्मा की अपेक्षा बाहिर के लोगों की चंचल, अस्थिर और संकीर्ण राय का आप अधिक आदर मान करते हो)। दूसरों की मतियों के अधीन नहीं, केवल अपने ही बल पर जीवन व्यतीत करो। स्वतंत्र रहो। एक मात्र प्रभु, आत्मा, एकमेवाद्वितीयं, असली पति, स्वामी, नाथ, अपने भीतर के ईश्वर को ही आप प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। किसी दशा में भी आप बहुत जनों, जनता, व बहुत संख्या को सन्तुष्ट नहीं कर सकोगे, और आप इस पागल जन-समूह (hydra-headed mob) को सन्तुष्ट करने के लिये किसी प्रकार से भी बाधित नहीं (ज़िम्मेवार) हो। आप स्वयं अपने कर्त्ता हो। अपने आप को ही गा कर सुनाओ, मानो कि आप ही एक अकेले हैं और दूसरा सुनने वाला कोई है नहीं। जब आप का अपना आत्मा प्रसन्न है, तो जनता अवश्य सन्तुष्ट होगी। यही नियम (दैवी विधान) है।

जो कोई भी संकल्पों में वास करता है, वह धोखे और रोग के शासन में वास करता है—और यद्यपि वह बुद्धिमान और विद्वान् प्रतीत होता है, तथापि उस की बुद्धि और विद्या ऐसी ही खोखली (पोपली) होती हैं जैसे दीमक से खायी हुई लकड़ी का टुकड़ा। इसलिये यद्यपि संकल्प आप को

चारों ओर से घेरे रहे (वा रक्षा करे), तथापि आप कों उन से बंध जाने की ज़रूरत नहीं (अर्थात् आप को किसी ख्याल के साथ बंध न जाना चाहिये); और जैसे जब कोई मनुष्य गरमा जाता है तो वह कोट उतार डालता है, वा जब हुश्यार कारीगर अपने औज़ारों से काम कर चुकता है, तो वह उन को परे रख देता है; वैसे ही जब संकल्प से काम ले लिया गया, तो उस को भी कोट वा औज़ारों के समान परे दूर कर देना चाहिये।

"जब आप काम पर हो, तो आप का ख्याल नितान्त उसी में एकाग्र होकर लग जाना चाहिये; और जो काम हाथ में हो उस से प्रयोजन न रखने वाली अन्य वस्तु से ख्याल को विक्षिप्त न होना चाहिये, और उस भारी शक्ति शाली और पूर्ण मित-व्यय वाले इञ्जन के समान चक्कर लगाते रहना अर्थात् काम करते रहना चाहिये, जैसे कि एक ही समय पर भिन्न २ शक्तियों (कलों) के काम करने से इञ्जन के भागों में न रगड़, न टूट फूट और न जोड़ तोड़ होता है।

फिर जब काम पूर्ण हो चुका और मशीन (कला) को वर्तने का कोई अवसर नहीं रहा, तो इस ख्याल को भी उस कला के समान पूर्णतया बन्द कर देना चाहिये-नितान्त रुक जाना चाहिये—और कोई चिन्ता वा क्लेश न होना चाहिये— (मानो कि लड़कों के एक जत्थे को कला के साथ उस समय नाना प्रकार की शैतानी भरी खेल करने की आज्ञा दे दी थी जब कि वह कला शेड अर्थात् शाला) में अचल पड़ी थी)। और मनुष्य को अवश्य उस विज्ञान मय कोश में वापिस लौटना अर्थात् विश्राम करना चाहिये कि जहां उस के अपने वास्तविक स्वरूप (आतमा) का वास है।"

Om;

"O my sons! O too dutiful
Toward Gods not of me
Was not I enough beautiful?
Was it hard to be free?
For, behold, I am with you, am in you;
And if you look forth now and see,
I bid you but be;
I have need not of prayer;
I have need of you free,
As your mouths of mine air;
That my heart may be greater within me.
Beholding the fruits of me fair.
I that saw where ye trod
The dim paths of the night,
Set the shadow called God
In your skies to give light;
But the morning of manhood is risen
And the shadowless soul is in sight.
The tree many rooted
That swells to the sky,
With frontage red-fruited
The Life-tree am I;
In the buds of your lives is
The sap of my leaves. Ye shall live and not die.
But the gods of your fashion
That take and that give,

In their pity and passion,
That scourge and forgive,
They are worms that are bread in the bark
That falls off; they shall die and not live.

अर्थ—ऐ मेरे पुत्रो ! ऐ देवताओं प्रति,
न कि मेरे प्रति, कर्तव्य परायण !
क्या मैं काफी सुन्दर न था ?
क्या स्वतन्त्र होना कठिन था ?
क्योंकि, देखो, मैं तुम्हारे साथ हूं, तुम में हूं,
यदि तुम अब विचार पूर्वक देखो, तो तुम्हें पता लगेगा
कि मैं तुम्हें अपने में स्थित होने की आज्ञा देता हूं।
मुझे आवश्यकता प्रार्थना की नहीं है
किन्तु तुम्हारे स्वतंत्र करने की है,
क्योंकि तुम्हारे मुख मेरी आकृति के हैं
जिस से अपने सौन्दर्य के परिणाम को देख कर
मेरा हृदय मेरे भीतर विशाल हो सके।
मैं ने जबकि तुम्हें रात्रि के धुंधले मार्गों में चलते देखा
तो मैं ने ईश्वर रूपी छाया आकाश मंडल में
तुम्हें प्रकाश देने के लिये डाल दी।
परन्तु मनुष्यत्व की प्रभात निकल आई
और छाया रहित आत्मा दृष्टि गोचर हुआ।
बहु शाखा सम्पन्न अश्वत्थ,
जो आकाश की ओर पक्के फलों सहित बढ़ रहा है,
वह जीवन वृक्ष मैं हूं।
तुम्हारे जीवन की कलियों में,
मेरे पत्तों का रस है। जिस से तुम जीवित रहोगे,
मरोगे नहीं।

परन्तु तुम्हारे कल्पित देवता
जो लेते देते हैं
और अपनी दया तथा क्रोध में
दण्ड देते और क्षमा करते हैं,
वे उस छाल से पुष्टि पाये हुए कीड़े हैं
कि जो गिर जाती है; वे (कीड़े) नष्ट हो जायंगे और
जीवित न रहेंगे।

—o—

अरण्य-सम्वाद ।

संख्या (७)

ग्रहस्थाश्रम ।

ठीक ऐनक के समान बनाओ।

ऐनक द्वारा हम प्रत्येक वस्तु देखते हैं, किन्तु वे हमारी आँखों के लिये बोझ नहीं हैं। निगाह में रुकावट डालने की जगह वे उसकी सहायता करती हैं। नेत्रों और दूसरे पदार्थों के बीच में परदा होने की जगह वे इन पदार्थों को स्पष्ट करके दिखाने वाली हैं। इसी प्रकार पति और पत्नी में संबंध होना चाहिये, एक को दूसरे के द्वारा बन्द करनेवाली रुकावट होने की जगह एक को दूसरे के द्वारा समस्त विश्व देखना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब कि यह सम्बन्ध आध्यात्मिक और वेदान्तोक्त विचार पर हो और किन्हीं दूसरी शर्तों पर न हो, जिससे वे दोनों व्यक्तित्व, व्यक्ति गत आदर मान, आस पास की वस्तुओं, प्रथाओं और

रीतियों, स्वभाव और कुप्रवृत्तियों से ऊपर उठकर जीव, प्रत्यगात्मा तथा आत्मा को देखें।

जिस प्रकार सांस हमारे अत्यन्त अधिक नज़दीक है किंतु हम उसे कदापि (भारी) भान नहीं करते, इसी प्रकार ग्रहस्थ-जीवन भी पूर्ण ज्ञानमय होना चाहिये। कुछ बोझ न हो! एक को दूसरे के हृदय पर भार रूप होकर लटकना नहीं है। दोनों स्वतन्त्र हों! दो में से एक को भी दूसरे का विचार किसी प्रकार बाधक न हो। आज कल ग्रहस्थ लोगों का यह हाल है, कि पत्नी का ख्याल मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में एक रुकावट है, पति का विचार स्त्री पर एक भारी बोझ और रुकावट है।

भारतवर्ष में पुरुष और स्त्रियां अपने नेत्रों में काजल लगाती हैं। नेत्रों की ज्योति को बढ़ाने के लिये वह उपयुक्त होता है, वह आँखों में ही रहता है, किन्तु निगाह में रुकावट नहीं डालता। जिस क्षण कि वह अपनी उपस्थिति जनाने लगता है, ठीक उसी क्षण उस में कुछ न कुछ खराबी पड़ जाती है। ठीक वैसे ही जब तुम उदर (पीड़ा) को भान करने लगते हो, तो उस में भी कुछ गड़बड़ी होती है। अर्थात् जिस क्षण काजल नेत्र में गड़ने लगे, उसी समय समझो कि उस में कुछ खराबी है। इसी प्रकार जब पेट दर्द करता है तो जानो कि कुछ उस के साथ भी गड़बड़ है। यह नियम है।

राम को उस की भूत काल की पत्नी ने यह प्रश्न किया था, "क्या आप मुझे स्मरण करते हो?" राम ने कहा, "नहीं, राम कभी स्मरण नहीं करता"। स्मृति उस मनुष्य की आती है जो अपने से भिन्न है। क्या आप अपने नेत्रों, अपनी नासिका वा अपने हाथों को स्मरण करती हो? कभी नहीं। वे

तुम्हारे साथ एक हैं। जब एक व्यक्ति दूसरे के साथ एक और आत्मस्वरूप हो कर मिल जाय, तो वह उसे स्मरण नहीं कर सकता। इन बातों को स्पष्ट कर लेना वा साफ़ समझ लेना चाहिये।

•

जब हमें किसी मित्र का पत्र मिलता है, हम उस पत्र को पसन्द करते हैं,उसे बहुत महत्व देते हैं। हम मित्र के कारण पत्र को प्रेम करने लगते हैं। इसी प्रकार पति और पत्नी को एक प्रकार का ईश्वर के पास से आया हुआ पत्र के समान होना चाहिये। पति का शरीर ईश्वर का पत्र वा चित्र सा होना चाहिये ; जिसमें स्त्री पति के शरीर से प्रेम करने और उसका सम्मान करने लगे; परन्तु यह सब कुछ होते हुये उसे केवल एक पत्र, चित्र, या ऐसी ही कोई वस्तु समझना चाहिये जो स्वयं वस्तु असलमें नहीं है। इस भाँति वह (स्त्री) उस पति के द्वारा ईश्वरको देखती है। पतिको परमेश्वर की एक प्रतिमा वा ईश्वर का एक चित्र मान लो। यदि रात्रि में (स्त्री पुरुष के) शरीर परस्पर मिलते हैं, तो दिन के समय स्त्री को आध्यात्मिक मिलाप करना चाहिये। यदि रात्रि में शारीरिक मिलाप के साथ २ आध्यात्मिक मिलाप नहीं भान होता, तो स्त्री को दिन में यह कमी पूरी करनी चाहिये। प्रत्येक आलिंगन के साथ स्त्री को यह विचार करना चाहिये कि "मैं ईश्वर-समागम प्राप्त कर रही हूँ। ए ज्योति स्वरूप! तू मेरे पास आ। मैं तेरा आलिंगन करती हूँ। आप चाहे उसे आनन्द कहें,चाहे उसे समस्त विश्वके साथ मिलाप वा पूर्ण पवित्रता कहें। हे देव! हे ज्ञान स्वरूप! तू मेरे पास आ,मैं तुम्हें स्वीकार करती हूँ"। इसी भाँति प्रत्येक वस्तु ईश्वर का चिह्न समझी जानी चाहिये। यदि रात्रि में इस का अनुभव नहीं हुआ, तो दिन के समय

इसकी पूर्ति करनी चाहिये। आप केवल उस एकता और विवाह (मिलाप) की दशा को भान कर सकते हैं। ईश्वर, ईश्वर, ईश्वर को आलिंगन करना। समस्त विश्व को एक ही का शरीर समझना। समस्त, सर्व रूप, सब कुछ हो जाना। यही भाव सदैव मन में रक्खे रहना चाहिये। जहाँ एक ओर वेदान्त आप से समस्त शारीरिक सम्बन्धों के भाव को त्याग देने की प्रार्थना करता है, और एक शरीर को दूसरे पर भार रूप नहीं होने देता, वहाँ दूसरी ओर वास्तविक आत्मा से सदैव एक रहने की भी प्रार्थना करता है। प्रत्येक समय आप इस ख्याल पर मनन करें कि "ईश्वर, शक्ति, ऐक्य, पूर्ण दिव्य-प्रेम, और विश्वव्यापी एकता सब मुझ में ही हैं। मैं वही हूँ, वही मैं है। वह मैं और मैं वह हूं।" तब आप को अपनी वास्तविक आत्मा कि जिससे आप ने विवाह किया है और जो आप का निजी अपना आप है, उसे पौदों, वृक्षों, नदी, और प्रत्येक वस्तु जो कुछ कि 'मैं' है, उन सब में अनुभव करना होगा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

अरण्य-सम्वाद ।

संख्या (८)

निन्नानवे (९९) का फेर ।

लोग कहा करते हैं कि निन्नानवे के फेर में मत पड़ो—इसका क्या अर्थ है ?

एक मनुष्य अपनी स्त्री के साथ अपनी छोटी सी झोंपड़ी में आनन्द पूर्वक रहा करता था। वे दोनों बहुत सुखी थे। वह सारा दिन मेहनत किया करता और जो कुछ मज़दूरी पाता, उस से किसी प्रकार निर्वाह करता अर्थात कालक्षेप करता था। उसे कोई दूसरी सांसारिक उच्चाभिलाषा, आकांक्षा, वा डाह और घृणा का भाव न था। वह एक अच्छा और निष्कपट परिश्रमी मज़दुर था। उस का एक पड़ोसी था जो कि एक बहुत धनाढ्य मनुष्य था। यह धनी सदैव चिन्ता-ग्रस्त रहता, कभी भी प्रसन्न न रहता था। एक वेदान्ती साधूने एक वार उस धनी और उसके दीन पड़ोसी अर्थात दोनोंके घरों में पदार्पण किया और धनी को बताया कि "तुम्हारी सारी चिन्ता और परेशानी का कारण तुम्हारी सम्पत्ति है। तुम्हारी सम्पत्ति ने तुम पर अधिकार जमा लिया है और तुम्हें दबाए रखती है; तुम्हारा मन एक पदार्थ से दूसरे तक दौड़ता है।" साधू ने ग़रीब पड़ोसी की ओर अंगुली बता कर कहा, "उस की ओर देखो, उसके पास कुछ नहीं है, किन्तु उसके मुख पर तुम आनन्द की सुरखी पाते हो, तुम उस के पुट्ठों को अति दृढ़ और उसकी बाहुओं को अति सुडौल पाते हो।

वह अति प्रसन्न, खुश, आनन्दित दशा में आनन्द के राग आलापते फिरता है।" वह धनी कभी भी ऐसे सुख का आनन्द न उठाता था। वह अपनी सम्पत्ति को इस भाँति सुसज्जित किये और बनाये हुये था कि जिस से दूसरे लोग उसे पसन्द करते थे। तब उस धनी ने साधू के वचनों की सच्चाई की परीक्षा करनी चाही। साधु की सम्मतिके अनुसार उस धनी ने चुराकर उस ग़रीब के घर में निन्नानवे रुपये फेंक दिये। दूसरे दिन उन्हों ने देखा कि उस ग़रीब के घर आग नहीं जली। ग़रीब के घरमें पहले खूब आग जला करती थी, और वे कुछ चीज़ें पकाते थे जिन को वह ग़रीब अपने परिश्रम से कमाए हुए रुपये से खरीद करा करता था। उस रात को उन्होंने घर में अग्नि न पाई, उन्हों ने कुछ न पकाया, उस रात वे फ़ाक़े से (निराहारी) रहे। दूसरेदिन प्रातः काल साधु उस धनी को साथ लेकर उस दीन मनुष्य के पास गया और घर में अग्नि न जलाने का कारण पूछा। ग़रीब आदमी साधू के सम्मुख कोई बहाना न बना सका, उसे सत्य २ बताना पड़ा। उसने कहा कि इससे पूर्व में कुछ पैसे कमाया करता था, और उन पैसों से आटा और तरकारी खरीद कर पका कर खाता था। किन्तु जिस दिन हम ने आग नहीं जलाई थी, उस दिन हमें निन्नानवे रुपयों से भरा हुआ एक छोटा सा संदूक़चा मिला था। जब हम ने निन्नानवे रुपये देखे, तो हमारे मन में यह विचार आया कि पूरे सौ में केवल एक रुपये की कमी है। अब उस एक रुपये को पूरा करने के लिये हम ने यह समझा कि हमें प्रत्येक तीसरे दिन खाना न खाना चाहिये, और इस प्रकार प्रायः एक सप्ताह में कुछ पैसे बचा लें जिस से एक रुपया बना कर पूरे सौ कर लिये जाँय। अतः हमें भूखा रहना पड़ा। धन-

वान मनुष्यों के सूमपन (कंजूसी) का यही रहस्य है। जितना ही अधिक धन वे पाते जाते हैं, उतने ही अधिक वे ग़रीब होते जाते हैं। जब वे निन्नानवे पाते हैं, उन्हें अधिक की इच्छा होती है, जब निन्नानवे सहस्र उनके पास होते हैं, तो वे एक लाख चाहते हैं।

उसे एक कुल्हाड़ी और तेज़ करना है।

बैञ्जेमिन फ्रैंकलिन (Benjamin Franklin) अपने स्वरचित जीवन-चरित्र में अपनी बाल्यावस्था का एक अनुभव वर्णन करता है। जब वह बालक था वह फ़िलाडेलफ़िया के स्कूल में जाया करता था, और एक दिन रास्ते में उस ने एक लुहार को काम करते देख लिया। उन दिनों कलों का इतना बड़ा प्रचार न था जितना कि आज कल। लुहार अपनी दुकान में काम कर रहा था। एक अनोखे बालक की नाईं बेञ्जिमिन दुकान के पास ठहर गया, और उस मनुष्य को कार्य्य करते देखता रहा। बच्चों का स्वभाव होता है कि जो विचार उन के सम्मुख आ जाता है उस में वे लीन हो जाते हैं। उस के हाथ में बस्ता था और वह स्कूल ही जा रहा था, किन्तु लुहार को काम करते देख कर इस दृश्य का आनन्द उठाने में वह स्कूल की बाबत सब बातें भूल गया। लुहार ने लड़के की दिलचस्पी देखी। वह अपने औज़ारों और चाकुओं को तेज़ कर रहा था। लोहार का सहकारी (असिस्टन्ट) किसी काम पर गया हुआ था, इस कारण उस वक़्त अनुपस्थित था। छोटे बालक को उस काम में इतनी अधिक दिलचस्पी लेते देख कर लुहारने बालक को अपने पास बुलाया। बैञ्जेमिन आगे बढ़ा और लोहार ने कहा, "क्या ही अच्छे लड़के, कैसे बढ़िये

बालक, और कैसे समझदार बच्चे तुम हो" । बैञ्जेमिन फूल गया और उस की चापलूसी में आ गया, और जब लुहार ने बैञ्जेमिन के चेहरे पर मुस्कान खिड़ती देखी, तो उस ने बैञ्जेमिन से पूछा कि क्या आप चाक (grindstone) के घुमाने की सहायता देने का कष्ट उठाइयेगा? बैञ्जेमिनने तुरन्त कार्य्य करना प्रारम्भ कर दिया। बच्चे स्वाभाविक फुर्तीले होते हैं और वे कुछ न कुछ करना चाहते हैं जिस से उन के पुट्ठे काम में लगे रहें। यदि आप उन के मन को हाथ में ले सको, तो आप उन्हें दुनिया भर के दूसरे सिरे पर भी भेज सकते हो। जब तक बैञ्जेमिन उस रेतने के चाक में काम करता रहा, तब तक लोहार उसकी प्रशंसा और खुशामद करता रहा। बालक काम करता गया। इतने में लुहार ने चाकुओं और कुल्हाड़ियों की एक अच्छी संख्या तेज कर डाली। उस समय तब छोटा बच्चा थक गया और स्कूल-समय को तथा कविता पढ़ने के घंटों को याद करने लगा। और इस पर उस ने दुकान छोड़ कर जाना चाहा। परन्तु वह लुहार तो बच्चे पर प्रशंसा और चापलूसी के तूमार बांधे हुए था और बालक से यों बोला "ऐ अच्छे लड़के, मैं जानता हूँ कि तुम स्कूल में कभी मारे नहीं जाते, तुम बड़े अच्छे और तेज़ हो। जो काम करने में दूसरे लड़के तीन २ घण्टे लगा देते हैं, तुम उसे एक घण्टे में ही कर डालते हो। स्कूल-मास्टर तुम से कभी रुष्ट नहीं होता, तुम बड़े ही अच्छे हो।" इस प्रकार एक एक करके सब तलवारें रेती गईं और जब एक आधी रेतनी रह गई, तो बैञ्जेमिन ने जाना चाहा, पर न जा सका। पठन काल दस बजे से आरम्भ होता था, और उसने बारह बजे छुटकारा पाया। वह स्कूल गया, और देरमें आने के कारण बेंतों से मारा गया। वह थक गया

था और उस की भुजाएं सूज गईं थीं। एक सप्ताह तक वह इस का परिणाम (दुःख) भोगता रहा। वह अपने पाठ तैय्यार न कर सका। इस के पश्चात् सदैव जब कभी कोई उस की खुशामद करता, तो उसे यह ख्याल आ जाता कि "इसे एक कुल्हाड़ी और तेज़ करना है"। इस के पश्चात् बैञ्जेमिन फ्रैंकलिन कभी खुशामद के फन्दों में न फँसाया जा सका।

——:०:——

अरण्य-सम्वाद्।

संख्या (१)

एक साधू के पास कुछ पैसे थे, और वह उन्हें कुछ बालकों को बाँटने के लिये घूम रहा था। बहुत से ग़रीब लोग उस के पास पैसा लेने को आए, किन्तु उसने उन्हें न दिया। अन्त में साधू के सामने से हाथी पर बैठा एक राजा आ निकला। साधू ने हाथी के ऊपर के हौदे में पैसे फेंक दिये, जहाँ कि राजा बैठा हुआ था। साधू के इस अनिश्चित कार्य्य पर राजा चकित हो गया। साधू ने कहा कि वह धन उसी अत्यन्त भारी निर्धन के लिये था। राजा ने पूछा कि मैं सब से अधिक निर्धन मनुष्य कैसे हूँ? साधू ने कहा कि तुम अत्यन्त निर्धन इस लिये हो कि तुम्हारे पास बहुत सी सम्पत्ति है, और फिर भी अन्य राज्यों के लिये तुम सदैव भूखे प्यासे (इच्छुक, लोलुप) रहते हो। अतएव तुम सब से अधिक निर्धन हो।

एक मनुष्य धन के ढेरों को एक सन्दूक़ में जमा कर रहा था। एक साधु उधर से निकला। वह धनी जो कि धन को बड़े २ सन्दूक़ों और लोहे की पेटियों में जमा कर रहा

था, उसने साधू जी को निमंत्रण दिया। और जब वह साधु उस के घर पर आया, तो उस ने इस धन जमा करने का कारण पूछा। धनी ने उत्तर दिया, "महाराज! आप को क्या चिन्ता, जनता आपको भोजन देती है, और यदि वह न भी दे, तो भी आप अपने शरीर की तृणवत् भी परवाह नहीं करते, किन्तु हमारे लिये यह आवश्यक है कि कुछ धन जमा रक्खें जो उचित अवसर पर लाभ दायक हो सके।" साधु चुप हो रहा। दूसरे दिन धनी को साधू की सड़ी सी कुटी पर जहाँ कि वह रहता था, उसे देखने जाना पड़ा। जब वह धनी साधू जी की कुटीके पास आया, तो उसे ज्ञात हुआ कि साधू जी ने बड़े परिश्रम से एक बड़ा सा गड्ढा खोदा है और उस गड्ढे में वह गोल २ सुन्दर पाषाण एक के उपर दूसरे ढेर कर के फेंक रहा है, और समस्त दिन इसी भाँति श्रम करता रहा है। जब धनी साधू जीके पास पहुँचा, तो उसने कहा, "स्वामी जी! स्वामी जी! यह आप क्या कर रहे हैं?" साधू ने कहा, "मैं इन सुन्दर पाषाण के टुकड़ों को जमा कर रहा हूँ, क्या तुम नहीं देखते कि वह कैसे गोल हैं?" धनी मुस्कराया और कहा, "आप इन्हें क्यों इकट्ठा कर रहे हैं? यहां तो सारा पर्वत उन्हीं से परिपूर्ण है। इन को इकट्ठा करने से क्या लाभ?" साधू जी ने कहा, "मैं इन्हें आवश्यक अवसर के लिये रक्षित करता हूँ। किसी समय मुझे इन की आवश्यकता पड़ सकती है, और सम्भव है कि ये समस्त पर्वत पृथ्वी की तह पर से धुल कर बह जायं, अतएव मैं इन्हें इकट्ठा करके जमा कर रहा हूँ।" धनी ने उत्तर दिया, "यह कैसे सम्भव है? पाषाण पृथ्वी पर से कैसे बहाए जा सकते हैं?" तब साधु जी धनी पर उछल कर बोले, "ऐ मूर्ख? यह पाठ मुझे तुम ने पढ़ाया

है। ऐसा समय कभी नहीं आएगा जब ईश्वर द्वारा तुम्हारा भोजन तुम्हारे सम्मुख न आवेगा। सोना चाँदी इकट्ठा करने में अपनी शक्तियों को वृथा अपव्यय करने और अपने अमूल्य समय को नष्ट करने से क्या लाभ? मुझ से एक पाठ सीखो। जीवन इस प्रकार खोने, इस फजूल-खर्ची के उद्देश्य के लिये नहीं है। उसे इन तुच्छ और क्षुद्र चिन्ताओं और परवाहों में नष्ट होने देना न चाहिये।

—:o:—

अरण्य-सम्वाद।

संख्या (१)

किसी समय एक क़ाज़ी वा गवर्नर, मुसल्मानी राज्य के समय, एक राजाधिराज के पास गया। बादशाह ने जो कि क़ाज़ी का बड़ा ही सम्मान, उस के धार्मिक अभिमानों के कारण, करता था, उसकी योग्यताओंकी परीक्षा करनी चाही। राजा आप तो विद्वान न था, किन्तु निम्न प्रश्न, जो कि वह क़ाज़ी जी से पूछना चाहता था, उस को किसी अन्य व्यक्ति ने जो कि उस गवर्नर की पदवी के पाने का अभिलाषी था, सुझाये थे। वह क़ाज़ी बादशाह के सम्मुख जब पहुँचा तो उस से यह पूछा गया "ईश्वर किस ओर अपना मुख रखता है, ईश्वर कहाँ बैठता है, वह क्या खाता है और क्या कार्य्य करता है"? बादशाहने क़ाज़ी जी से कहा कि "यदि आप इन प्रश्नों के उत्तर मेरे सन्तोषजनक दे देंगे, तो आप की पदोन्नति की जाएगी"। क़ाज़ी ने सोचा कि बादशाह से पूछे गए प्रश्न अवश्यमेव अति कठिन होंगे। वह प्रशंसा करके बादशाह को प्रसन्न करना और उसकी चापलूसी

करना जानता था, और फिर उस ने इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये आठ दिन का अवकाश माँगा।

क़ाज़ी आठ दिन तक बराबर सोचता रहा, किन्तु किसी परिणाम पर न पहुँच सका। वह बादशाह को सन्तोषजनक उत्तर कैसे दे सकता था। अन्त में आठवाँ दिन आ पहुँचा, किन्तु क़ाज़ी को प्रश्नों के उत्तर न सूझे। तब उस ने और अवकाश पाने के निमित्त रोग-ग्रस्त होने का बहाना किया। क़ाज़ी का नौकर उस के पास पहुँचा और जानना चाहा कि मामला क्या है। क़ाज़ी ने कहा, "भाग जाओ, मुझे तंग न करो, मैं मरने को हूँ"। नौकर ने कहा, "कृपया मुझे यह तो बताइये कि मामला क्या है। आप के बजाय मैं अपने आप मरना अच्छा समझता हूँ, न कि आप को कोई दुःख झेलना पड़े"। तब अपनी कठिनाई उसे समझा दी गई। यह नौकर बहुत नीच स्थिति में था, ऐसी स्थिति कि जो तनिक भी सम्मान पात्र न समझी जाती थी, अर्थात् गारा वा चूना सानना। परन्तु क़ाज़ी का यह सच्चा शिष्य और एक विद्वान मनुष्य था। वह प्रश्नों के उत्तर जानता था और कहा कि मैं चला जाऊंगा और उत्तर दे आऊंगा, पर आपको मुझे एक आज्ञा-पत्र जाने का लिख देना चाहिये, और यदि मेरे उत्तर बादशाह को सन्तोषप्रद न हुये, तो मैं मरूंगा, न कि मेरा मालिक। क़ाज़ी इस के करने में संकोच कर रहा था, किन्तु उसी क्षण बादशाह का एक दूत उस के पास पहुँचा और वह बहुत कांपने लगा। अतः उस ने नौकर को जाने के लिये कह दिया। उस ने अपने सर्वोत्तम वस्त्र, जो कि गुदड़े मात्र थे, पहने। वह एक वेदान्ती भाई था। भारत वर्ष में सदैव राजा लोग स्वामियों के पास जाते हैं और बहुत सी विद्या व

ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह पण्डित (नौकर) निर्भय होकर बादशाह के पास पहुँचा और कहा, "महाराज, आप क्या चाहते हैं, आप को क्या पूछने की इच्छा है"? बादशाह ने कहा, "क्या तुम उन प्रश्नों का उत्तर दे सकते हो जो तुम्हारे मालिक से किये गए थे"? पण्डित ने कहा, "मैं उन का उत्तर दूँगा, किन्तु आप जानते हैं कि जो उत्तर देता है वह गुरू होता है, और जो प्रश्न करता है वह शिष्य। हम आप से एक सच्चा मुस्लिम होने की आशा करते हैं और यह कि आप अपने पवित्र धर्म-ग्रन्थों (कुरान इत्यादि) के नियमों के अनुसार करेंगे। नियमानुसार मुझे सम्मान के स्थान पर बैठना चाहिये और आप को मुझ से नीचे बैठना होगा"। अतः बादशाह ने उसे कुछ सुन्दर वस्त्र पहनने को दिये और वह बादशाह के तख़्त पर बैठ गया, और बादशाह नीचे क़दमों पर (चरणों में) बैठा। परन्तु बादशाह ने कहा, "एक बात और है, यदि आप के उत्तर मुझे सन्तोषप्रद न होंगे, तो मैं आप को मार डालूँगा"। पण्डित ने कहा, "निस्सन्देह, यह तो समझा ही हुआ था"।

अब पहला प्रश्न जो किया गया वह यह था, "ईश्वर कहाँ बैठता है"? यदि पण्डित (नौकर) अक्षरशः उत्तर देता, तो बादशाह उसे समझ भी न सकता, अत एव पण्डित ने कहा "एक गाय लाओ"। गाय लाई गई। उस ने कहा, "क्या गाय के दूध है"? बादशाह ने कहा, "हाँ, निस्सन्देह है," "दूध कहाँ रहता है"? बादशाह ने कहा, "थन में"। पण्डित ने कहा, "यह ग़लत है, दूध समस्त गाय में सर्व-व्यापक है"। "गाय को जाने दो"। तब कुछ दूध लाया गया। पं० ने पूछा "मक्खन कहाँ है? क्या मक्खन दूध में उपस्थित

है" ? बादशाह ने कहा, "हाँ, है" ।" किन्तु परिडत ने कहा वह कहाँ है ? मैं जानूँ भी तो" । बादशाह बता न सके । तब उस (परिडत) ने कहा, "यदि आप यह नहीं बता सकते कि मक्खन कहाँ रहता है, तो भी तुम्हें यह विश्वास तो ज़रूर होगा कि वह है अवश्य यहां; वास्तव में मक्खन है प्रत्येक जगह । इसी प्रकार ईश्वर भी समस्त विश्व में है । ठीक ऐसे ही जैसे कि दूध में मक्खन हर जगह है, और दूध गाय में प्रत्येक स्थान पर है । दूध पाने के लिये तुम गैया दुहते हो, इसी प्रकार ईश्वर को पाने के लिये अपने हृदय को दुहना चाहिये" । उस मनुष्य (परिडत) ने तब पूछा, "बादशाह सलामत ! क्या आप को उत्तर मिल गया" ? बादशाह ने कहा, "हाँ, ठीक है" । अब वे लोग, जो कि कहते थे कि ईश्वर सातवें या आठवें आकाश में रहता है, बादशाह की निगाहों में गिर गये । वे उस के लिये अब कुछ न थे, उन की स्थिति ठीक न थी ।

तब दूसरा प्रश्न आया-"ईश्वर किस ओर देखता है, अर्थात् उत्तर, दक्खिन, पूर्व, या पश्चिम ?" यह भी बहुत विचित्र प्रश्न था, किन्तु ये लोग ईश्वर को एक व्यक्ति की नाईं देखते थे । उस ने कहा, "बहुत अच्छा, एक (रोशनी) ज्योति लाओ ।" एक मोमबत्ती लाई गई और जलाई गई । उसने उन्हें दिखाया कि मोमबत्ती उत्तर, दक्खिन, पूर्व, पश्चिम की ओर नहीं देखती, किन्तु सब स्थानों पर समान है । बादशाह को सन्तोष हो गया । इसी प्रकार ईश्वर तुम्हारे हृदय में एक मोम बत्ती है, जो सब ओर मुँह किये हुए है ।

अब प्रश्न आया, "ईश्वर करता क्या है ?" उसने कहा "बहुत अच्छा" और बादशाह को बोला कि जा कर काज़ी को

ले आओ। जब उसका मालिक (क़ाज़ी) आया, वह नौकर को बादशाह के तख़्त पर बैठा देखकर चकित होगया। तब उसने क़ाज़ी से उस जगह बैठने को कहा जहाँ पण्डित (उसका नौकर पहिले) बैठता था, और बादशाह को क़ाज़ी की जगह पर बैठाया, और आप बादशाह के तख़्त पर बैठा। उस ने कहा, "यही ढंग है जिस में ईश्वर वस्तुओं को चलाता रहता है। पण्डित को बादशाह बनाता है, बादशाह को क़ाज़ी, और क़ाज़ी को पण्डित।" यही है जो कि संसार में सदैव होता रहता है। एक कुटुम्ब उन्नति पाता है, तब वह अज्ञात होता है, दूसरा उसका स्थानापन्न होजाता है। एक समय के लिये एक मनुष्य उच्च सम्मान पाता है, तब दूसरा उस का स्थान ग्रहण कर लेता है, इसी प्रकार दिन प्रति दिन, वर्ष प्रति वर्ष, होता रहता है। और इसी प्रकार इस संसार में परिवर्तन सब समय होता रहता है। उसी दिन से वह पण्डित (काज़ी का नौकर) काज़ी बना दिया गया।

अरण्य सम्वाद।

संख्या (११)

निम्नांकित आख्यायिका पैन्हरकरी टेल्स के यात्रियों में से एक नाज़ुक, लम्बे नवयुवक क्लर्क द्वारा कही गई थी, जिस की बारी श्रोताओं को प्रसन्न करने की थी।

किसी देश में एक बहुत कुलीन, विद्वान और प्रतापवान् राजकुमार था, जिस ने थोड़े ही दिन से गद्दी पाई थी। वर्षों पर वर्ष व्यतीत होते गए, किन्तु उस ने विवाह न किया। मनुष्यों को बड़ी चिन्ता थी कि वह विवाह करे, क्योंकि वे राज-सिंहासन के लिये एक उत्तराधिकारी के अभिलाषी थे। उन्हों ने राजकुमार से बहुत हठपूर्वक एक पत्नी चुनने के लिये प्रार्थना की, और अन्त में राजकुमार ने इस शर्त पर चुनना स्वीकार किया कि यदि आप मुझे अपना मनमाना चुनाव करने देंगे, तो मैं ऐसा करूंगा। आप जानते हैं कि उस देश में प्रेम तथा विवाह में भी किसी को कोई स्वतन्त्रता न थी। वे प्रथा वा रीति रवाज में बँधे हुये थे। राजा अपनी इच्छाओं के अनुसार विवाह करना चाहता था। उस की प्रजा ने यह सोच कर कि यदि उसकी बात स्वीकार न करेंगे, तो वह आयु भर क्वारा रहेगा, उसे अपनी इच्छानुकूल चुनाव करने देना ही उचित समझा। उस ने अपने सभासदों और कर्म्मचारियों को एक बड़े भारी वैवाहिक त्योहार की तैयारियाँ करने की आज्ञा दी। प्रत्येक बात बड़े राजसी ठाठ और महत्व पूर्ण शैली में तैयार की गई। नियत दिवस पर एक सेना बड़े समारोह के साथ सजाई गई। प्रत्येक मनुष्य सर्वोत्तम वस्त्रों में सुसज्जित था और सवारियों में सवार था। राजकुमार बीच में सवार जाते थे, अर्द्ध सैन्य एक ओर और

द्वितीयार्द्ध दूसरी ओर थी। वे बादशाह की आज्ञानुसार किसी मार्ग विशेष का अवलम्बन न करके चलते गए। वे बड़े घने आच्छादित वन के बीच में पहुँचे। वे आपस में कहते थे, "राजा क्या करने जा रहा है, क्या वह झील, स्तम्भ या पाषाणों के साथ विवाह करने जा रहा है?" वे चकित थे। वे चलते गए और अन्त में उन वनों में एक ऐसे स्थान पर आए, जहाँ एक झोपड़ी छोटी सी थी, और उस झोपड़ी के पास एक सुन्दर, स्वच्छ, निर्मल सरोवर के किनारों पर उन्हों ने सुन्दर, शानदार और प्राकृतिक वाटिकाएं पाईं, और वृक्षों में से एक की डालियों से एक पालना लटक रहा था जिस पर एक वृद्ध लेटा हुआ था। उन्हों ने (चित्त में) कहा "क्या राजा उस वृद्ध से विवाह करने जा रहा है? सेना का अर्द्ध भाग निकल जा चुका था और जब राजा का हाथी उस स्थान पर पहुँचा, उस ने आज्ञा दी, "ठहरो"। तत्क्षण वहां इसी दृश्य में एक सुन्दर, खूबसूरत और प्यार करने योग्य कन्या दिखाई दी, जो उसी पालने को जिस पर कि उस का पिता लेटा हुआ था, धीरे २ झुला रही थी।

बादशाह सिंहासनासीन होने के पूर्व उस वन में कई बार आ चुका था। उस ने लड़की को ध्यान पूर्वक देखा और सदैव उसे अत्यन्त कर्तव्यपरायण पाया था। वह बहुत श्रद्धा पूर्वक अपने पिता की सेवा सुश्रूषा करती थी, पानी लाती, उसे नहलाती और खिलाती थी। वह सब प्रकार का झाड़ने, बुहारने, वा माँजने इत्यादि का कार्य्य करती थी। परन्तु यह कार्य्य करते समय वह सदैव प्रसन्न, प्रकाशमान, आनन्दित, हँसमुख और गाती हुई *रोबिन (सुर्ख चिड़िया)

---

* एक आंगल पक्षी

की नाई रहती थी। बालिका के इस आनन्दमय स्वभाव ने राजा पर ऐसा प्रभाव डाला था कि उसने (चित्त में) प्रण कर लिया था कि यदि वह कभी विवाह करेगा तो उसी के साथ करेगा। लड़की चकित होकर इस महत्वपूर्ण सेना की ओर देख रही थी, उसे तनिक भी यह ध्यान न आया था कि वह मनुष्य जो कई बार अश्वारोही होकर उनके द्वार पर से निकला था यही राजा है। उसने अपने पिता से पूछा कि इस भारी तमाशे का क्या तात्पर्य है? उस के पिता ने कहा कि एक दुलहा दूर देश की किसी राजकुमारी को अपनी पत्नी बनाने जा रहा है। अब राजा हाथी पर से उतर पड़ा, वृद्ध के पास गया और पूर्वीय प्रथानुसार उसके पैरों पर गिर पड़ा। वृद्ध ने उस से कहा, "पुत्र, क्या चाहते हो?" राजा का चेहरा चमक उठा। उस ने कहा "मैं अपने आप को आप का जामाता (दामाद) बनाना चाहता हूँ।" वृद्ध का हृदय प्रसन्नता से उछल पड़ा। उस के आनन्द मग्न होने का पारावार न रहा। उसने कहा, "राजन्, आप भूल गए हैं, आप भ्रम में हैं; आप एक दरिद्र साधू की कन्या के साथ विवाह करने की कैसे इच्छा कर सकते हैं? हम बहुत ही दीन, बहुत ही निर्धन हैं।" राजा ने कहा कि मेरा जितना प्रेम इस कन्या (तुम्हारी पुत्री) के साथ है, उतना किसी और के साथ नहीं। पिता ने कहा यदि यह दशा है तो वह आप की है। यह पिता एक वेदान्ती साधू था, उस ने अपना ज्ञान अपनी पुत्री को दे रक्खा था। अब उस ने राजा से कहा कि मेरे पास पुत्री को देने के लिये और कोई यौतुक (दहेज़) नहीं है। एक मात्र वस्तु जो मैं दे सकता हूँ वह मेरा आशीर्वाद है। तब राजा ने अपनी दुल्हन के सम्मुख सब प्रकार के सुन्दर वस्त्र रख दिये, जिन को उसने पहनने को उस से कहा। उस ने वैसा ही किया।

परन्तु बालिका राजा के पास खाली हाथ नहीं गई। उस के पास एक यौतुक (दहेज़) था। वह क्या था? जिन टोक-रियों को राजा ने उसके पास रत्न,ज्वाहर रखने को भेजा था, उन में से एक में उस ने अपने गुदड़े रख लिये, जिन को वह पिता के साथ रहते समय पहनती थी। अब वृद्ध पिता अकेला रह गया, एक नौकर उन की सेवा में नियत कर दिया गया, उस ने राजा से और कुछ भी नहीं चाहा।

राजा अपनी दुल्हनको महलमें ले गया। प्रथमसे ही उसके सभासद् दुल्हनको पसन्द न करते थे, क्योंकि वह गरीब घराने की थी। ये कुलीन और धनाढ्य मनुष्य ऐसा चाहते थे कि राजा उनकी पुत्रियों वा भतीजियों से विवाह करे,और यहाँ उन सब को एक गरीब घराने की लड़की के आगे नीचा देखना पड़ा। उन्हें उस (लड़की) से बड़ी ईर्षा हो गई। वे इस (गरीब घराने की) लड़की के सामने कैसे झुक सकते थे। किन्तु नई रानी ने अपने मृदु स्वभाव, विनम्र व्यवहारों, और प्रेम मय आचरणों से उन सब को मुग्ध कर लिया। धीरे २ वे सब उसे बहुत ही प्यार करने लगे। रानी सदैव चुपचाप और शान्त रहती थीं,किसी सम्बन्धमें कभी बेचैन वा हैरान परेशान न होती थीं; चाहे कैसा ही संयोग क्यों न हो कुछ चिन्ता न करती थीं। प्रायः एक वर्ष पश्चात रानी के एक पुत्री उत्पन्न हुई। सुन्दर शिशु-कन्या थी। राजा और रानी कैसे प्रसन्न हुये होंगे। जब वह शिशु-कन्या तीन चार वर्ष की हुई, राजा रानी के पास आया और उस से कहा कि राज्य में एक विद्रोह, एक फसाद होने वाला है, शायद बलवा हो जाय, जो कि बहुत ही अप्रिय बात होगी। रानी ने इन बातों की दशा का कारण पूछा। पति (राजा) ने उत्तर दिया कि पदाधिकारी और मन्त्री

सब मेरे से तबसे ही ईर्षा करते हैं जबसे कि मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया था; और अब वे इस ख्याल को सहन नहीं कर सकते कि यह कन्या जो अपनी माता की ओर से छोटे कुल की है राजगद्दी की उत्तराधिकारिणी हो। वे उत्तम कुल का रक्त चाहते हैं, और राजा के किसी प्रधान मन्त्री के पुत्र को मेरी गोद बैठाया चाहते हैं। किन्तु राजा ने कहा कि यदि उन्हों ने ऐसा किया तो जब कन्या बड़ी होगी तब बहुत सम्भव है कि इन दोनों के बीच शत्रुता होजाय। अतः इस परिणाम को रोकने के लिये मैं सदैव पुनः सोचता रहा हूँ और अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि इस कन्या को मार डालना ही सर्वोत्तम होगा। तब ग्रिसेल्डा (Griselda) जो कि रानी का नाम था, उस ने राजा को यह बहुत ही उत्तम आदर्श रूप उत्तर दिया। यह उत्तर उसका राजा के हेतु धर्म और कर्तव्य का नमूना है। उसने कहा, "आप जानते हैं कि जिस दिन से मैं यहाँ आई, हूँ आप के साथ सिंहासन सुख भोगने की मेरी अपनी इच्छा न थी। मैं ने अपनी इच्छा और मरज़ी को केवल आप का बनाया हुआ है। मेरा व्यक्तित्व और स्वत्व सब आप में मिला है, और जहां तक यह आपके काम का है वहां तक जीवित रक्खा है, न कि आप के उद्देश्य में रुकावट डालने के लिये है। यदि आप की यही इच्छा है कि पुत्री मार डाली जाय, तो उसे मार डालिये। मैं ने अपने अन्तः हृदय में कभी पुत्री को अपनी नहीं कहा।" पुत्री आधी रात्रि में ले जाई गई, और कुछ घण्टों के पश्चात राजा ने लौटा कर कहा कि लड़की मारे जाने को जल्लादों के पास दे दी गई है। रानी चुप चाप, धीर, शान्त और प्रसन्न रही, जैसे कुछ हुआ ही न था। यह वेदान्त है। किसी बाह्य कारण से आप दुःखी मत हों।

अब राजा ने कहा कि प्रत्येक मनुष्य प्रसन्न रहेगा। लग भग एक वर्ष पश्चात् एक छोटा पुत्र उत्पन्न हुआ। यह शिशु प्रत्येक का प्रेम-भाजन था, बालक पाँच छे वर्ष की आयु पर पहुँचा, तब फिर गड़ बड़ मची। राजा ने कहा कि वर्तमान दशा को देखते हुये इस शिशु को भी मार डालना उचित है। यदि यह शिशु जीवित रहेगा तो एक घोर ग्रह-संग्राम होगा, अतः राष्ट्रीय शान्ति स्थिर रखने के लिये शिशु को मरवा डालना चाहिये। रानी फिर भी मुस्कराती और प्रसन्नमुख रही, और कहा कि मेरी वास्तविक आत्मा समस्त राष्ट्र है, मेरे पास कुछ व्यक्तिगत नहीं है, मैं सूर्य्य के समान हूँ, मैं दान करती हूँ। सूर्य्य की नाई हम किसी से लेते कुछ नहीं, हमें देना उचित है। जब हमें कोई बन्धन नहीं है, हमें किसी से मोह नहीं है, तो ऐसी क्या बात हो सकती है जो हमारी प्रसन्नता को रोके। सूर्य्य सर्व काल देता रहता है और फिर भी निरन्तर चमकता रहता है। वह शिशु भी छीन लिया गया। कुछ वर्षों के पश्चात् एक तीसरा बालक उत्पन्न हुआ और जब वह भी तीन चार वर्ष का हुआ, तो वह भी इसी भाँति छीन लिया गया।

अब सोचो कि, रानी ने अपनी वृत्तियों वा मन बुद्धि को कैसे स्थिर रक्खा? जिस दिन से वह महल में आई थी, वह एक एकान्त भवन में चली जाती थी, जहाँ उसने अपने गुदड़े (फटे पुराने कपड़े) रख छोड़े थे। वही उसका एकान्त भवन था, वहाँ वह सब सुन्दर वस्त्र उतार डालती और पुराने गुदड़े पहन लेती थी, और अपने साधारण वस्त्रों में यह सोचा करती थी कि मैं वही (निर्धन कुल की लड़की)

हूँ। और अपने भिखारी वस्त्रों में वह अपने ईश्वरत्त्व का अनुभव करती थी। शेक्सपियर कहता है;–

"Uneasy lies the head that wears the crown."

अर्थात् "जो सिर मुकुट धारण करता है, वह बेचैन रहता है"।

वह अपने अन्तः हृदय में समझती थी कि मैं वही सरोवर के तटों पर गाने वाली स्त्री हूं। यहाँ मैं महल में बन्द और अपनी स्वतन्त्रता से रहित की गई हूं। किन्तु मैं अपने आप को दुःखी नहीं बनाती और न मैं अपने आपको मामलों में फँसाती हूं। मुझे किसी से मोह नहीं है, मेरा आत्मा इर्द गिर्द की बातों से सदैव पृथक वा निर्लिप्त रहता है। मैं सदैव ईश्वरत्वमें मग्न हूँ।" इस प्रकार समस्त मोह और बन्धनों को परे हटा कर वह अपने आप को पवित्र रखती थी। उस की कोई ज़िम्मेदारी न थी। वह किसी व्यक्ति और कर्तव्यों के बन्धन में न थी। इस प्रकार आप भी जब कभी तुम सुख या दुःख में हो, अपने आप को सब मोहों, सम्बन्धों, इच्छाओं, और आवश्यकताओं से अलग कर लो। आप (वास्तव में) स्वतंत्र हो। इसी प्रकार रानी अपने आप को सदैव राज-महल में ठहरने के दिनो में रखती थी।

एक रात्रि को राजा उस के पास आया और कहा कि हमारे लिये हर समय अपने पुत्र पुत्रियों को मारते रहने में काम न चलेगा, और मैं पुत्र गोद लेने के विचार को पसन्द नहीं करता। अतएव इस मामले पर विचार करने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि मेरे लिये फिर एक विवाह करना सर्वोत्तम है। और इस भाँति शान्ति स्थिर हो जायगी। रानी ने इच्छापूर्वक स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह अपना

आनन्द राजा से नहीं प्राप्त करती थी, वरन् उस को आनन्द अपने भीतर के आत्मा से प्राप्त होता था, न कि दूसरों से। वह अपना सब सुख अपने भीतर के ईश्वर से प्राप्त करती थी, न कि अपने पति, पिता और बच्चों से। राजा उसकी प्रसन्नता पर चकित हो गया और पूछा कि आप क्या करना पसन्द करोगी। रानी ने कहा कि आपकी (राजा की) इच्छा ही मेरी इच्छा है। राजा ने रानी से कहा कि यदि आप यहां रहोगी, तो आनन्द टूट जाने की संभावना है और आप के लिये चला जाना ही सर्वोत्तम होगा। उसी क्षण वह सुन्दर वस्त्र उतार डाले गए, और पुराने गुदड़े, साधू के वस्त्र, फिर पहन लिये गए, और उस ने महल को त्याग दिया। वह प्रसन्न और सुखी थी और प्रसन्न चित्त अपने पिता के पास चली गई, जो कि स्वयं भी सदैव की नाईं प्रसन्न थी। राजा का नौकर जो कि वृद्ध पिता के पास था, तुरन्त राजा के पास वापिस भेज दिया गया।

एक दिन राजा रानी से सहानुभूति प्रकट करने के विचार से झोपड़ी के पास से होकर निकला, किन्तु जब उसने उसे प्रसन्न और हँसमुख देखा, तब उसने ऐसा करने का अवसर न पाया। तब उस ने रानी से आकर पूछा कि क्या आप आ कर नई दुल्हन का स्वागत करोगी। रानी ने आनन्द से स्वीकार कर लिया। रानी ने प्रत्येक वस्तु का प्रबन्ध और सजाव ऐसे प्रेम पूर्ण ढंग से किया कि मैजिस्ट्रेट और उन की स्त्रियां इस सजावट का सौन्दर्य्य देख कर चकित हो गईं। नियत ठहराव के अनुसार दुल्हन को एक बड़ी सेना और स्वर्ण तथा रत्नों के दहेज़ के साथ आना था। वह बड़े गौरव और महत्व के साथ आई और बड़े राजसी

ठाठ वाट से राजा की आज्ञानुसार ग्रिसेल्डा तथा अन्य सभासदों की स्त्रियों द्वारा उस का स्वागत किया गया। जब ग्रिसेल्डा ने नई रानी को देखा, उस ने उसे ऐसे प्यार किया, चूमा, हृदय से लगाया, जैसे कि वह स्वयं उस की माता थी। ग्रिसेल्डा के साथ की महिलाएँ नव वधू के सौन्दर्य्य को देख कर चकित हो गईं, किन्तु वे पुरानी रानी के आध्यात्मिक सौन्दर्य्य को देख कर और भी चकित हुईं। नव वधू अपने साथ अपने दो छोटे भाइयों को भी लाई थी। उस देश की प्रथा के अनुसार महिलाओं और राज सभा के सदस्यों को महल में जाकर एक बड़े भोजन का सुख भोग करना था। ग्रिसेल्डा उस उत्सव की सभापति थी। जब लोगों ने पहली रानी के शान्त, चुप चाप और सुखप्रद व्यवहारों को देखा, तो हृदयों में पश्चाताप हुआ और उन के नेत्रों से अश्रु वहने लगे। उत्सव समाप्त होने के पश्चात् ग्रिसेल्डा को महल छोड़ कर अपने पिता की कुटी में लौट जाना था। परन्तु जैसे २ वे भोजन करते गए, रानी के सम्बन्ध में उनके सब शोक भाव दूर हो गए, और वे उस के सम्बन्ध में सब कुछ भूल गए। किन्तु जब वह राजा से विदा हो रही थी और उस से कह रही थी कि यदि कभी मेरी आवश्यकता पड़े तो बिना संकोच के मुझे बुला लें, तो विनम्र महिलाओं के हृदय द्रवीभूत हो गए और वे फूट २ कर रो पड़ीं। उन्हें अपनी पाषाण हृदयता (पत्थर दिली) पर पश्चाताप हुआ। उन्हों ने कहा, "आप साधुपुत्री नहीं वरन् ईश्वर की पुत्री हैं"। तब उन्हों ने वर्णन किया कि इस रानी ने किस भाँति देश में शान्ति स्थिर रखने के लिये अपने बालकों को मार डालने के लिये आज्ञा दे दी थी, और नव महारानी भी रोने

लगीं। उस ने कहा, आप की कन्या और पुत्रों का वध किया गया और मैं रक्त की धारा के बीचसे गुज़र कर आई हूँ। तब वे राजापर लांछन लगाने लगे। सब उपस्थित थे,अर्थात् नई रानी और वह रानी भी जो विदा होने वाली थी। तब राजा उठा और बोला, "हे पदाधिकारियों! न्याय कर्ताओं! और महिलाओं! तुम सब लोग रो पीट रहे हो, केवल एक ग्रिसेल्डा को छोड़कर। मैं भी सुख दुःख से मिले हुये भावों के साथ रो रहा हूँ। हे प्रजागण! मैं तुम्हें दोष नहीं देता, तुम मेरे बच्चे हो; मेरे नेत्र अश्रुपूर्ण हैं, पर वे शोकाश्रु नहीं हैं किन्तु सुख और आनन्दके अश्रु हैं। ईश्वर करे आप के अश्रु भी सुख के अश्रु हों।" राजा ने ग्रिसेल्डा से कहा, "ईश्वर करे तुम भी प्रसन्न मुख रहो और सुखी समस्त राज्य में तुम्हीं तो सुखी हो"। अब ऐसा मालूम हुआ है कि नव वधू जो समीप के देश के राजा की पुत्री थी, वह केवल गोद ली हुई पुत्री थी, और ऐसे ही उस के छोटे भाई भी। ये शिशु अनाथों की नाईं उस के मार्ग में पड़ गए थे और इनके सौन्दर्य्य के कारण उसने अपने बच्चों की नाईं इन्हें पाला था। ये तीनों शिशु राजा और ग्रिसेल्डा के पुत्र थे, क्योंकि वे जल्लाद जिन्हें वह (बच्चे) मार डालने को दिये गए थे ऐसे हृदय न रखते थे कि उन्हें मार डालते, और वे उन्हें उस देश को ले गए थे। अब ये सब बातें लोगों को बताई गईं। और जब उस देश के राजा ने इन सुन्दर शिशुओं को काले जल्लादों के हाथों में देखा, उस ने विचार किया कि अवश्य वे किसी राजा के बच्चे हैं, और उन को अपना करके पाला। निस्सन्देह राजा अपनी ही पुत्री के साथ विवाह नहीं कर सकता, अतः सब के आनन्द हेतु ग्रिसेल्डा रानी रही और उस के शिशुओं को राज्य मिला। अतएव तुम

देखते हो कि ईश्वर सदैव बड़ा कृतज्ञ रहता है, वह अपना क़र्ज़ ब्याज सहित चुका देता है।

प्रत्येक विवाहित स्त्री से प्रेम में पदार्थों का ऐसा ही शाही त्याग होना चाहिये। भारत में इसे पतिवृत और पत्नीवृत कहते हैं,जिसके यह अर्थ हैं कि स्त्री को अपने पति में और पति को अपनी पत्नी में जीना उचित है। स्त्री को अपने पति में ही परमेश्वर देखना चाहिये। उसे अपना शरीर और मन अपने पति के अर्पित कर देना चाहिये, और पति को स्वयं अपनी पत्नी के भीतर के ईश्वर के आगे अर्पित कर देना चाहिये। इस में कोई वस्तु व्यक्तिगत और स्वार्थमय नहीं है। भारत में विवाह सदैव नदीतट पर खुली वायु में होता है। प्रिय वायु चलती होती है, और सिर पर सूर्य उदय हुआ होता है। यहाँ देखो, भाव यह है कि स्त्री को पुरुष का हाथ अंगीकार करना होता है और पुरुष स्त्री के हाथ को अंगीकार कर के इन दोनों हाथों को ईश्वरार्पण कर दे देता है। जैसे ग्रिसेलडा को आसक्ति न थी, उसी प्रकार स्त्रियों को अपने तईं ईश्वर के आगे अर्पित कर देना होता है।

मनुष्यों को भी ऐसा ही करना चाहिये। ग्रहस्थ जीवन सुखमय होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, यदि पति पत्नी में और पत्नी पति में अपने आप को नितान्त भूल जाय वा लीन कर दे। यह व्यक्तिगत जीवन की अभेदता है जो प्रेम और जीवन को वास्तव में भोगने योग्य बनाती है।

अरण्य-सम्वाद

संख्या (१२)

प्रश्नोत्तर

राम परमानन्द में लीन है !!

वास्तविक आत्मा अवतार वा जन्म नहीं लेता, केवल सूक्ष्म वा परिच्छिन्न आत्मा (सूक्ष्म शरीर) ऐसा करता है; वास्तविक ईश्वर अवतारों वा जन्म मरण से परे है। विश्व मेरा शरीर है, समस्त वायु मेरी श्वास है, वृक्ष मेरे लोम हैं, नदियाँ मेरी नसें हैं, पर्वत मेरी अस्थियाँ हैं।

किन्हीं २ स्थानों में देर तक अरुणिमा (आकाश में लाली, twilight) रहती है, दूसरे स्थानों में सूर्य्य एकदम दिग्मण्डल (horizon) में कूद पड़ता है। आप बीच के स्थानों में चाहे पड़े रहो, चाहे उड़ जाओ, यह पूर्ण रूप से आप ही की इच्छा पर, जो आप करते रहते हैं, निर्भर है। इच्छा ही शक्ति है, अर्थात् प्रकाश, तेज, विद्युत, शब्द और भिन्न २ आविर्भावों की शक्ति है। माद्दा (matter, तन्मात्रा) शक्ति का ही एक स्वरूप है। लेबनिट्ज़ (Leibnitz) परमाणुओं को शक्ति के केन्द्र समझता है; ठोस पदार्थ भी मेरी इच्छा है, वर्फ़ जल है और जल भी जल है, रूप मैं हूँ, मैं ही रूपमें निवास करने वाला हूँ। आप प्रत्येक वस्तु हो। इस आत्मज्ञान में जाग उठो। योग-दर्शन आप के पीछे लगेगा। प्रत्येक वस्तु आप के पास आयगी। लोग सुषुम्णा नाड़ी (Spinal columm) के नाम से

भ्रम में पड़ जाते हैं, वे राजमार्ग से भटक कर दुर्गम मार्ग के भीतर चले जाते हैं। यदि आप अँग्रेज़ी के आठ 8 अंक को एक दूसरे के ऊपर रखते चले जाओ, तो लगातार उन में छिद्र बने दिखाई देंगे, और वे छिद्र दो नहरें बनाते दिखाई देंगे। पुस्तकें इन नहरों को खोलने पर ज़ोर देती हैं। जिस मनुष्य ने यही कार्य्य करने के लिये बारह वर्ष तक श्रम किया और पढ़ा था, उसे राम ने इस का एक रहस्य बतलाया। यों ही आज जब वह आया, उस ने कहा कि इस थोड़े समय में ही उसने सब कुछ पा लिया और पूर्व की निस्बत अब वह अपने उद्देश्य के अधिक पास है। वह लोग अपने आप को भ्रम में डाल लेते हैं जो ऐसी बातों पर ज़ोर दिया करते हैं जैसे सुषुम्णा नाड़ी का खोलना। भोजन उदर में पहुँच जाता है, आक्सीजन गैस से मिलकर शरीर में पहुँचता है, गैस सम्बन्धी रस पाता है, नसों की नहरों में दौड़ता है, परन्तु हमें उसकी परिवर्तित बनावट समझने की आवश्यकता नहीं होती। जैसे भोजन अपनी रक्षा आप कर लेता है, इसी प्रकार जब कोई मनुष्य अनुभव की इच्छा करता है, तो (राजयोग) आप का कुछ लाभ नहीं कर सकता। ठीक राह पर चलने का आप केवल यत्न करो, भेद अवश्यमेव आप पर खुल जावेगा। अपनी श्वास पर काबू पाओ, निरर्थक बातों में अपना समय नष्ट न करो, इन ढंगों से आप को लाभ नहीं, प्राण का निग्रह मन का निग्रह नहीं है; इन मार्गों पर निर्भर रह कर कोई मनुष्य अपने मन को एकाग्र नहीं कर सकता। रोकी हुई श्वाससे मनपर क़ाबू नहीं पा सकता है। यह झूठा तर्क है प्रत्येक भूमितिशास्त्रज्ञ (Geometrician) यह तथ्य प्रत्येक मनुष्य पर ठूँसना चाहता है कि प्राणायाम ही मन का निग्रह है। मन को वश में करो, प्राण स्वतः वश में हो जायगा।

राम ने दूसरे ही मार्ग का अवलम्बन किया है। राम उपदेशों के होते हुये भी साधारण रूप से इस मामले को न देख सका। राम ने मन को रोका, श्वास ने उस का अनुसरण किया। एक बार राम ने स्नान किया, तालाब में घुसा और डुबकी लगाई। उपस्थित मित्रों ने भी नहाया, पानी में घुसे, किन्तु झट निकल आए, राम का मार्ग देखा, वह उन में उपस्थित न था, उन्हों ने उसे डूबा समझा, या यह कि मगर ने उसे खालिया है, उन्हें बड़ा भय हुआ। राम ऊपर आया, उन्हें आश्चर्य्यान्वित किया। श्वास इच्छानुकूल वश में की जा सकती है। वास्तविक आत्मा के स्वरूप में बैठ कर अनुभव करो और ईश्वर के साथ एक हो जाओ। श्वास आप का एक ग़रीब, दीन नौकर है, आप विश्व की श्वास को वश में करो। अपने आप को ऐसे मुग्ध करलो, जैसे माँ बच्चे को मुग्ध कर लेती है, जबकि वह उसके कानमें कहती है; "हे जौन्ही ! हे ज्यार्ज" ! और वह उसे शरीर द्वारा जान्ही और ज्यार्ज बना देती है।

जागो ! हे दिव्य चेतन शक्ति ! विश्व के प्रभु ! ब्राह्मण्डा के शासक ! उठो, जागो, मुख्य बात तुम ने अभी (अनुभव) करनी है। सूर्य्यों के सूर्य्य ! प्रकाशों के प्रकाश ! वही मैं हूँ ! तुम मनुष्य, स्त्री, भिखारी, वा राजा या दरिद्र, रंक क्यों हो ? तुम ने आप ही ऐसा निदिध्यासन किया है और फिर वही तुम हो गये हो। अपने आप को ईश्वर मान करो, तुम ईश्वर हो जाओगे। एक घर के बनाने में बहुत काल लगता है, पर खोदने में थोड़ा। तुम ने अपनी २ कालकोठरी बनाने में बहुत समय लिया है, उसे खोद डालो। देवों के देव तुम हो ! अपने आप को वास्तबिक आत्मा में ले उठाओ। अपने

आप को प्रकाशों के प्रकाश में फेंक दो। समस्त संसार को अपने सम्मुख विस्तृत देखो। जब कि उदय काल का सूर्य्य आकाश वृतके नीचे होता है,तो भारत में सुहाना समय होता है, दृश्य ऊँचा उठता है अर्थात् दृश्य दोबाला होता है। एक बार तो तुम वहाँ सुन्दर पर्वतों पर चढ़ सकते हो। ठीक जिस प्रकार हम गुल्ली को पहले उछालते हैं, और जब वह ऊपर उठती है,तो उसे एक ज़ोर की चोट और देते हैं जिससे उसे वायु मण्डल में दूर फेंकते, उछालते और उड़ाते हैं; उसी प्रकार मन को वायु-मण्डल में उठाओ, जिस के पश्चात् उसके लिये दौड़ना सरल हो जायगा,यहाँ तक कि वह सर्वोच्च आकाश में ईश्वर हो जाएगा। पक्षियों के गानों, पवनों की सनसनाहट, स्रोतों की कल कल द्वारा प्राप्त उत्तेजना को ऊँचा उठने दो, ओ३म् गाओ, निदिध्यासन की भाषा में गाओ। प्रथम सूर्य्य की ओर ऐसे देखो जैसे दर्पण में अपने को देखते हैं, किसी द्वैत दशा में नहीं। मेरा अपना आत्मा परम है। मैं वही हूँ। भारतीय स्त्रियां अपने अँगूठों में छोटी छोटी आरसी पहनती हैं, और उस में देखते हुये वे काञ्च को नहीं देखतीं, किन्तु अपने मुख को अपने से बाहर देखती हैं;पर उसे अपनाही मुख समझती हैं,यद्यपि उसे बाहर देखती हैं; इसी प्रकार वेदान्ती अनुभव करता है कि सूर्य्य उस की अपनी आत्मा है। मैं सूर्य्यों का सूर्य्य हूँ। वह सूर्य्य मेरी छाया मात्र है! ओ३म् का अर्थ है " वह मैं हूँ; भाषा, ओष्ठ, निदिध्यासन, कर्म सब ऐसा कहते हैं।

"बच्चे! इधर आ"! तुम्हारे इन शब्दों में कोई जोर नहीं; पर जब एक दूसरा बच्चा, जो अनुपस्थित था और जिस के देखने के लिये तुम इच्छुक थे, आता है, तुम कहते

हो, "अरे बच्चे आ, आ !," यह शब्द प्रत्येक नस और वाल बाल से निकलते हैं। तुम उस की ओर भागते हो, उस से चिपट जाते हो, उसे वाहों में भर लेते हो, यही भाव की भाषा है। अपने शरीर के रोम रोम से ओ३म् उच्चारण करो। पहिले धीरे २ से प्रारम्भ करो; ध्वनि पहिले गले से निकलती है, फिर हृदय से, फिर और अधिक नीचे से, यहाँ तक कि रीढ़ की हड्डीके नीचे से; तब विद्यतके धक्के से, सुषुम्णा नाड़ी खोलकर तुम्हारी श्वास सुरीली हो जाती है। रोग के सब कीटाणु (germs) तुम्हें त्याग देते हैं। एक वेदान्ती सूर्य्य से अपना सम्बन्ध उसी प्रकार का समझता है जैसे चन्द्रमा का सूर्य्य के साथ है। चन्द्रमा आप ही आप चमकता प्रतीत होता है, परन्तु सब चमक सूर्य्य से आती है। इसी प्रकार सूर्य्य अपने प्रकाश से प्रज्वलित प्रतीत होता है, परन्तु वह प्रकाश मुझ से आता है।

स्वप्न में तुम भिन्न २ पदार्थ देखते हो, जैसे कि एक बिजली का गोला। तुम विना प्रकाश कुछ नहीं देख सकते, किन्तु स्वप्न में पदार्थ दिखाने के लिये कोई प्रकाश नहीं। वह कौन सा प्रकाश है जो तुम्हें वहां बिजली का गोला या मणि दिखाता है ? वह आत्म-प्रकाश, तुम्हारी अपनी आत्मा है । तुम्हारे स्वप्न में सूर्य्य का प्रकाश तुम्हारा, अपना प्रकाश है। सूर्य्य की महिमा मेरी महिमा से ही दिखाई देती है। इसी प्रकार वेदान्ती अनुभव करता है। भौतिक जगत में सूर्य्य प्रकाश व ज्ञान का चिन्ह है; इस प्रकार सूर्य्य की ओर देख कर मैं अनुभव करता हूँ कि मैं ज्ञान की ज्योति हूँ। सूर्य्य शक्ति का चिन्ह है, जिस से ग्रह आदि घूमते फिरते हैं और जो सब को जीवन देता है।

ॐ के अर्थोंको अनुभव करने की यह एक दूसरी विधि है

अ. सत्य का प्रतिपादन करता है,

ऊ, चित् (ज्ञान) का प्रतिपादन करता है

म्, आनन्द का प्रतिपादन करता है

लेखन शैली के प्राचीन मार्ग (बीजाक्षर) में सूर्य्य स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ ओ३म् का चिन्ह है। एक लिखित शब्द की नाई ओ३म् और यह सूर्य्य, अर्थात् यह स्थूल चिन्ह मेरी ही एक मूर्ति है।

सूर्य्य सौन्दर्य्य का चिन्ह है, सब ग्रहों को आकर्षित करता है, ऐसा प्रकाशवान्! ऐसा शानदार! आनन्द का प्रतिनिधि स्वरूप है। अनुभव करो,कि मैं तत्व,वस्तु सत्य और तेज हूँ। सब विशेषण मेरे ही हैं। मुझ में हैं, सब मैं हूँ।

सच्चिदानन्द हूं। सूर्य्य मेरी ही एक छोटी सी स्थूल मुड़ी हुई प्रतिमा है। मैं ओ३म् की उपासना नहीं करता, ओ३म् मुझे उपासता है। मैं वह सूर्य्य हूँ जिस के सम्मुख सब नक्षत्र, सब आकाश सम्बन्धी तथा मनुष्य सम्बन्धी शरीर घूमते हैं। ए स्थिर और सनातन! मेरे सम्मुख सारा संसार मुझे अपने सब विभाग और तरफ़ें दिखाने के लिये, तथा अपना समस्त सौन्दर्य दर्शाने के लिये चक्कर लगाता है। सूर्य्य मेरी खातिर मेरे सम्मुख चमकता है।

(The heart of Christ) ईसा का हृदय,

(The brain of Shakespeare) शेक्सपियर का मस्तिष्क,

(The mind of Plato) प्लेटो का मन,

सब मेरे प्रताप को भान करते हैं, वा सब मेरे प्रताप पर पलते हैं, मेरे तेज वा प्रकाश का पीते हैं। सूर्य्य की मौजूदगी से लोग यह सोचते हैं कि पुट्ठे इसी से हिलते हैं; ईश्वर की

सी मेरी यह मौजूदगी (अस्तित्व) है कि जिसके द्वारा सब कुछ होता है।

सूर्य्यों का सूर्य्य मुझ में रहता है, प्रकाशों का प्रकाश मैं हूँ। मेरे अस्तित्व के समुद्र से सब लहरें आती हैं। मैं राजाओं का राजा हूँ। सब नृपों, सब पुष्पों की नाईं मैं सूर्य्य की किरणों में मुस्कराता हूँ। मैं शूरवीरों के पुट्ठों (muscles) को हिलाता हूँ। प्रत्येक स्थान पर मेरी ही इच्छा पूरी की जाती है। मेरा राज्य और प्रताप नित्य प्रति सब जीवों को भोजन देता है और पृथ्वी को घुमाता है। बुरे विचार और सांसारिक इच्छाएँ मेरे सम्मुख आने का कोई अधिकार नहीं रखतीं।

मेरे पवित्र आत्मा की उपस्थिति में छोटी २ इच्छाएँ दख्ल देने का कोई अधिकार नहीं रखतीं। क्रोध, उत्तेजना इत्यादि तम की वस्तुएँ हैं। मैं उच्चतम और नीचतम सभी में व्यापक हूँ। मैं दर्शक, तमाशागर तथा कर्त्ता हूँ। ईसा में भी मैं हूँ, और अति कलंकित में भी मैं हूँ! सब मैं!! जो कुछ भी तुम्हारी कलंकित इच्छाओं का पदार्थ है वह मैं हूँ। मैं बिजली की गरज हूँ; फ्रैंकलिन, न्यूटन, काल्विन तथा ईश्वरीय दूतों के हृदयों का उमँडता हुआ समुद्र मैं हूँ। ध्यानों और दृश्यों का मुख्य स्रोत मैं हूँ! इस भाव से ओ३म् में यह सब अर्थ प्रवेश करो। मार्ग सुगम है! प्रभाव को उच्चारण करो, उसी में रहो, उसी में देवताओं की नाईं विचरो। जो आकांक्षाएँ बड़ी नहीं हैं उनके सामने झुकना मानों आत्माभिमान का अभाव है। अपनी गौरव पूर्ण शान और महिमा में विचरण करो। यदि आप लौकिक इच्छाओं से विचलित हो गए, तो मानों आप ओ३म् नहीं उच्चार रहे हो।

अपना समय सुषुम्णा के खोलने वा सहस्र दल वाले कमल में ही व्यर्थ नष्ट न करो; ये सब स्वतः तुम्हारे पास आएँगे। तुम अद्भुत फल भोगोगे। भय, चिन्ता, बेचैनी से ऊपर उठो। तुम सब ज्ञान अनुभव करोगे अर्थात् तुम सर्वज्ञानी हो जाओगे। संसार स्वयं तुम्हारे पास आएगा। प्रत्येक पदार्थ तुम्हें सम्मान देगा। आड़े तिरछे मार्ग में भटक कर अपने आप को भ्रम में मत डालो, तुम्हें पछताना पड़ेगा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

But thou art the root of things
present, past, and future.
Thou art father and mother ;
Thou art masculine ;
Thou art feminine ;
Hail ! root of the world ;
Hail ! centre of things ;
Unity of Divine numbers

* * * *

Thou art what produces,
Thou art what is produced ;
Thon art what enlightens ;
Thou art what is enlightened;
Thou art what appears,
Thou art what is hidden,
By Thy own brightness.

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

———

परन्तु तू वर्तमान्, भूत और भविष्य रूप
वस्तुओं की मूल है।
तू पिता है, तू माता है।
तू पुरुष है, तू स्त्री है,
ऐ जगत की जड़ रूप !
ऐ पदार्थों के केन्द्र रूप !
ऐ दिव्य नानत्व में एकत्व !
तुझे नमस्कार हो, नमस्कार हो।
....

तू ही सृष्टा है,
तू ही सृष्टि है,
तू ही प्रकाशक है,
तू ही प्रकाश्य है,
तू ही प्रत्यक्ष है,
और अपने ही प्रकाश से
तू अप्रत्यक्ष हो रहा है।

हिमालय से (भेजे हुये) पत्र।

हिमालय दृश्य पहिला।

वासिष्ठ—आश्रम।

आज सन्ध्या समय वर्षा रुक गई। मेघ, जो कि समस्त प्रकार के विचित्र २ रूप धारण कर रहे थे और भिन्न २ अंश की मुटाई के थे, भिन्न २ दिशाओं में कुछ विखड़ से गये। वह प्रकाश जो वादलों में से फूटता और प्रतिबिम्बित होता था, सारे दृश्यको उसने तेज का एक प्रज्वलित मण्डल वना दिया था। तब आकाश मण्डल के खिलाड़ी बच्चों ने सब प्रकार के आकर्षक रंग धारण कर लिये। कौनसा चित्रकार ऐसे रंग दे सकता था? कौनसा प्रेक्षक इन सब चलती हुई छाया

और रंगों का निरीक्षण कर सकता था ? तुम जहाँ चाहो देखो, नेत्र नारंगी, बैंगनी, लाल, गुलाबी रंगों और उन के अकथनीय प्रकारों से मुग्ध हो जाते हैं, यद्यपि इनके बीच बीच सदैव सुहावनी काली, नीली, भूमि कहीं २ दीखती है। उज्ज्वल शोभा आनन्द उमड़ा लाती है, और राम के नेत्रों में आनन्दाश्रु दिखाई देते हैं। बादल उड़ जाते हैं, किन्तु एक स्थिर संदेह पीछे छोड़ जाते हैं। वे ईश्वर से एक अमृत का प्याला लाए थे, और उसी के पास वापिस लौटा ले गए। सब आकर्षक पदार्थ वास्तव में ऐसे ही होते हैं। वे दिखाई देते हैं, एक क्षण भर राम का महत्व दर्शाते हैं, और फिर मिट जाते हैं। वह मनुष्य निस्सन्देह पागल है जो इन चलायमान मेघों के साथ प्रेम करता है। और तब भी लोग इन देखने मात्र (माया रूपी) पदार्थों के अस्थिर बादलों को ज़ोर से पकड़े रखने का यत्न करते है, और उन्हें जाते हुये देख कर बच्चों की भाँति रोते हैं। कितना मनोरंजनक (दिलचस्प) है ! ओह ! मैं हँसी को दबा नहीं सकता।

अन्य लोग फिर इन बादलों (नाम रूपी पदार्थों) के नाशवान हेर फेर के लघुत्तम विस्तार को बहुत बारीकी से देखने और श्रद्धापूर्वक निरीक्षण (नोट) करने में अपना समय व्यय करते हैं। आह ! यह कैसे जीव हैं। उनके चारों ओर तेज की बाढ़ है, और उस पर भी वे प्रकाशार्थ अपनी भीषण पिपासा को बुझाने का प्रयत्न नहीं करते। ये वही लोग हैं जिन्हें वैज्ञानिक और दार्शनिक कहते हैं। बाल की खाल ही निकालने में लगे रहने के कारण वे उस प्रियतम के तेजस्वी सिर को नहीं देखते कि जिस में बाल लगा हुआ है। ओह, मैं अपनी हँसी को दबा नहीं सकता। वही सुखी है जिस की दृष्टि को नाम रूप के बादल रोक नहीं

सके, जो सदैव आकर्षक प्रकाश द्वारा उस के वास्तविक केन्द्र (आत्मा) का खोज लगा सका है, और जिसका प्रेम अन्तिम ध्येय (ईश्वर) तक पहुँच चुका है, अर्थात् वे रास्ते में ही उन स्रोतों की नाईं नष्ट नहीं हो जाते कि जो समुद्र तक पहुँचने के पूर्व ही सूख जाते हैं। इन सुन्दर रिश्ते-नातों (संबन्धियों) को दूर होना होगा। वे केवल चिट्ठीरसां होते हैं। प्रभुका प्रेम-पत्र जो वे तुम्हारे हेत लाए हैं, उसे खोना मत। दिया-सलाई (जान) शीघ्र जल कर बुझ जाएगी, किन्तु सुखी वही है जिसने सदैव के लिए उस से अपना दिया जला लिया है। भोजन और भाप की सामग्री शीघ्र ही समाप्त हो जाएगी किन्तु वही जहाज़ भाग्यवान है जो उस भयानक हानि के पूर्व ही घर (बन्दर स्थान) पर पहुँच जाता है। वही मनुष्य जीवित रहता है कि जो प्रत्येक पदार्थ चाहे वह कुछ भी हो, ईश्वर तक पहुँचने की एक सीढ़ी या ईश्वर को देखने का एक दर्पण बना सकता है। संसार अपने समस्त तारा-गण, पर्वतों, नदियों, राजाओं, अथवा वैज्ञानिकों इत्यादि के सहित उसी (मनुष्य) के लिये बनाया गया था। निस्सन्देह यह ऐसा ही है, मैं तुम्हें सत्य कहता हूं।

खेत और दृश्य, जहां शहरों की धूम्र पूर्ण व्याधिमय सड़कों की अपेक्षा उनमें मस्तिष्क को ताज़ा करनेवाली मनोहरता वा सुन्दरता है, वे अपनी समालोचना वा प्रशंसा से मनुष्य में संकुचित भाव नहीं उत्तेजित करते, और न वे उसे कोने (शरीर) में ही हाँक देते है। मनुष्य उन की उपस्थिति में भली भाँति एक साक्षी (प्रकाश) की स्थिति में रह सकता है। आन्तरिक दृष्टि द्वारा देखने से प्रतीत होता है कि वनस्पति वर्ग में उतनी ही या शायद अधिक समर और संग्राम और अशान्ति इत्यादि रहती है जितनी कि

सभ्य सामाजों में, परन्तु उन का संग्राम तो वहां तक सुखप्रद वा मनोहर होता है जहां तक देवदार, शावलूत, सनोवर के मध्य मनुष्य अपने आप को उन्हीं में से एक नहीं समझता किन्तु सरलता पूर्वक अपने आप को एक साक्षी प्रकाश की भाँति अलग रख सकता है। वह मनुष्य जो कि नगर की भरी हुई गलियों में भी वन में किसी एकाकी विचरने वाली व्यक्ति के समान रह सकता है, जो अपने को शरीर से अभेद न करके बल्कि उसे बूटों में से एक बूटा समझ कर अपने आप (आत्मा) को उससे असंग साक्षी भान कर सकता है, उस के लिये "यह विश्व ईडन का उद्यान (Garden of Eden) है," इस से भला कौन इन्कार कर सकता है? ऐसे ईश्वरीय जीवन वाले पुरुष संसार की ज्योति हैं। वह ज्योति जो कि असंग साक्षी की भाँति दिखाई देती है वह उस सब की जान (प्राण) है जिस को कि वह देखता है।

जीवन-स्रोत बह रहा है। ईश्वर के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व नहीं रखता। मैं किस से भयभीत और किस से लज्जित होऊँगा? समस्त जीवन मेरे ईश्वर का जीवन है, कोई दूसरा नहीं, वह और मैं भी 'वही' है। समस्त संसार मेरा अपना हिमालय का वन है। जब प्रकाश की प्रभात होती है, पुष्प हँसने (खिलने) लगते हैं, और स्रोत प्रसन्नता पूर्वक नाचने लगते हैं। आह, वह प्रकाशों का प्रकाश! प्रकाश का सागर बह रहा है। परम आनन्द की वायु झकोरे ले रही है।

इस सुन्दर (विश्व रूपी) वन में मै हँसता और गाता हूँ, मैं ताली बजाता और नाचता हूँ।

क्या वे ठट्ठा वा बोली मारते हैं? वह तो यों ही पवन का

वहना है। क्या वे उपहास उड़ाते हैं ? वह तो पत्तियों का खड़खड़ाना है। क्या मैं अपने ही जीवन से ढक लिया जाऊँगा जो कि स्रोतों. देवदारों, पत्तियों और पवनों में धड़क रहा है ?

I dance, I dance, I laugh and dance.
The stars I raise as dust in dance.
No jealousy, no fear,
I'm the dearest of the dear.
No sin, no sorrow.
No past, no morrow.
No rival, no foe,
No injury, no woe.
No, nothing could harm me,
No, nothing alarm me,
The soul of all
The nectar fall,
The sweetest self
Yea ! health itself,
The prattling streams
The happiest dreams,
All myrrh and balm,
Rawan and Ram
So pure and calm
Is Rama, is Rama.
The heavens and stars,
Worlds near and far,

Are hung and strung
On the tunes I sung.

अर्थ-मैं नाचता हूं, मैं नाचता हूं, मैं हँसता हूं और नाचता हूं।
तारे मेरे नाच की धूल से उठते हैं।
मुझे न कोई ईर्ष्या है, न भय,
मैं प्यारों का प्यारा हूं।
मुझ में न पाप है,न शोक,
न भूत है, न भविष्य,
न रकीब (rival) है, न शत्रु,
न दुःख, न क्लेश।
नहीं, कोई वस्तु मुझे हानि नहीं पहुंचा सकती,
नहीं, मुझे कोई वस्तु भयभीत नहीं कर सकती।
यह सब की आत्मा,
यह अमृत-वर्षा,
यह मृदुतम आत्मा,
हां, यह स्वयं स्वस्थ रूप,
ये कल कल करती नदियां,
ये अति आनन्द दायक स्वप्न,
यह समस्त रस गंध और मरहम,
यह रावण और राम,
अति पवित्र और शान्त
सब राम है, राम।
ये आकाश और तारे,
ये दूर नेड़े जग सारे,
मेरे गायन की तानों पर
पुरोये और लटके हुए हैं।

——:-:*:-:——

दृश्य (२)

बसून का शिखर—(वासिष्ट आश्रम)

चन्द्रमा चमक रहा है कि मानो रुपहली शान्ति को फैला रहा है। चन्द्रिका राम के कुशासन पर भली भांति छिटक रही है। असाधारण रीति से लम्ब और श्वेत गुलाब के झाड़, जो कि इस पर्वत पर निर्भयता के साथ स्वतंत्रता पूर्वक जंगली ढँग पर उग रहे हैं, उन की छाया चाँदनी रूपी बिछौने का बाधक बन इस प्रकार कलोल करती हुई फट-फटा रही हैं, कि मानों वे छायायें उसे कोमल चन्द्रिका के सुन्दर तुच्छ स्वप्न हैं, कि जो (चन्द्रिका) राम के सम्मुख इतनी शान्ति से सो रही है।

सो जा मम शिशु ! सो जा !
और सुन्दर स्वप्न से मुस्का !

यमनोत्री, गंगोत्री, सुमेरु, केदार और बद्री की बर्फ़ीली चट्टानें यहां इतनी समीप हैं कि मानों कोई उन तक हाथ बढ़ाकर पहुँच सकता है। वास्तव में यह प्रज्वलित मणि-मुकुट शिखरों का वृत्तार्द्ध (semi-circle) इस वासिष्ठ आश्रम को एक जौहरी के मुकुट के सदृश सुसज्जित कर रहा है। उन के श्वेत बर्फ़ीले शिखर सब इस चन्द्रिका के दूध रूपी सागर में नहा रहे हैं और शीतल पवन के रूप में उन की गहरी 'सोहम्' रूपी श्वासें लगातार यहां पहुँच रही हैं।

इस पर्वत पर का सब बर्फ़ पिघल गया है और इस समय तक शिखर के पास चौड़े २ खुले हुये खेत नीले, गुलाबी, और श्वेत रंग के पुष्पों से नितान्त ढके हुये हैं,

जिन में से कुछ तो बहुत सुगंधित हैं। लोग यहां आने से डरते हैं क्योंकि उन का विश्वास है कि यह स्थान 'परियों का उद्यान' है। यह विचार देवताओं के इस आराम बाग़ को उन अधर्मी पुरुषों के आगमन से बचा देता है कि जो प्राकृतिक सौन्दर्य्य के बिगाड़ने वाले हैं। राम इस पुष्पवाटिका में बड़ी सावधानी से धीरे २ चलता है कि कहीं कोई नाज़ुक हँसता हुआ फूल उस के कठोर चरण-पात से नष्ट न हो जावे।

कोयल, फाख्ता, और अन्य बहुत से गाने वाले पक्षी प्रातः काल राम का आदर सत्कार करते हैं, कभी २ प्रातः एक विशाल अजगर कन्दरा की छत के पास आता है और अपनी अजीब रहट (persian wheel) सरीखी ध्वनि के गान से राम की दावत करता है। शाही गरुड़, ऊँचे उड़ते और दोपहर को काले मेघों को छूते हैं। क्या ये वही विष्णु को अपनी पीठ पर ले जाने वाले गरुड़ नहीं हैं? एक रात्रि को एक शेर राम के पास से ही झपटता चला गया।

उस सामने वाले पर्वत-सरोवर के आस पास इन जंगल के देवों (वृक्षों) की कैसी सुन्दर बस्ती है। कौन सा संबन्ध उन्हें मिलाता है? उन का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है, न कोई व्यक्ति गत रिश्ता है। उनका मानों एक सामाजिक संगठन है, परन्तु केवल इतना ही कि वे अपनी जड़ें उस एक ही आत्मा रूपी सरोवर में भेजते हैं (अथवा उनकी जड़ें उसी एक सरोवर से निकलती हैं)। उसी एक ही जल का प्रेम उन्हें पास २ रखता है। हमें भी उसी सत्य की भक्ति में-स्वर्ग में-हृदय में-राम में मिलना चाहिये।

——————

दृश्य (३)

जगदेवी का सब्ज़ मैदान

अथवा जगदेवी-तृणभूमि (मृगराज)

वर्षा से वसून गिरि-शिखर के पास की सब गुफाओं के भर जाने के कारण राम को उस शिखर पर के परियों के बाग को छोड़ना पड़ा। वह नीचे एक बहुत ही प्रिय ऊँचे घासदार मैदान (मृगज़ार) पर उतर आया, जहाँ सदैव वायु चलती रहती है। श्वेत और पीत चमेली सहित अनेक अन्य सजाति पुष्पों के यहां पर बहुत उगती है। झलबेर, (Straw berries) तथा लाल गुलाबी बेर (rose berries) यहां पके हुए बहुत अधिकता से पाये जाते हैं। नई बनी हुई कुटी के एक ओर दो बहती हुई नदियों के बीच एक साफ़ सुथरा हरा मैदान बहुत दूर तक धीरे २ चढ़ाई दार ढाल में चला जाता है। सम्मुख एक मनोहर दृश्य (भूप्रदेश, landscape), बहता पानी, हरी कोमल पत्तियों से ढकी पहाड़ियाँ, और आनन्द प्रद वन और मैदान हैं। साफ़ चिकने पाषाण-खण्ड राम के लिये मैदान में शाही मेज़ों और बैठने के आसन का काम देते हैं। यदि छाया चाहिये, तो वृक्षों के विशाल कुञ्ज बहुत सुखप्रद स्थान देते हैं।

[वर्षा]

वनवासी गड़रियों ने एक कुटी तीन घण्टे के अन्तर तैयार कर दी। उन्हों ने अपनी शक्ति भर उसे वर्षा से सुरक्षित बना दिया था। रात में, भयानक वर्षा का तूफ़ान आया। तीन तीन मिनट पीछे बिजली चमकती और फिर बादल गर्ज उठती थी, जिस से हर बार पर्वत हिलजाते और काँपने

लगते थे। यह इन्द्र-वज्र लगातार तीन घण्टे तक अपनी चोट करता रहा। जल मूसलाधार गिरा। बेचारी कुटी टपकने लगी। वर्षा के तूफ़ान के लिये उस की रुकावट इतनी निष्फल हुई कि सारा काल पुस्तकों को भीगने से बचाने के लिये ही एक छाता खोले रखना पड़ा। वस्त्र सब भीग गए। भूमि घास से ढकी होने के कारण कीचड़ वाली न हुई, किन्तु तब भी वह छत से लगातार टपकती हुई जल की बूँदों को सन्तोष पूर्वक पीती रही। राम उस समय प्रायः बहुत कुछ 'मछली या कछुए' के जलमय जीवन का आनन्द भोग रहा था। उस रात भर के जलमय जीवन का अनुभव अपना एक विशेष आनन्द रखता है।

"ज़ि उम्र यक शबा कम गीरो ज़िन्हार मखुस्त"

अनुवादः – तू अपने जीवन के पूरे अन्दाज़े (आयु) में से एक रात कम गिन और बिल्कुल मत सो।

उस आँधी को धन्यवाद जिस ने हमें ईश्वर की संगति में रक्खा।

"महे चन त्वाद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥"

अनुवादः—हे पर्वतों के हिलाने वाले! हे गर्जन करने वाले! और हे अगणित कृपा वाले प्रभु! न हज़ार के लिये, न दस हज़ार के लिये, बल्कि उस से भी कई सौ गुणा अधिक के लिये, मैं तुझे किसी भी मूल्य पर नहीं त्याग सकता।

"यच्छ्रकासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्यु गदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ अविवासति॥"

राम का अपना अर्थः—हे शक्र (सर्व शक्तिवान इन्द्र)! चाहे तू दूर हो (गरजते हुये मेघों में), या हे वृत्र-घातक

(शंका नाशक) ! चाहे तू पास ही (चलती हुई वायमें) हो; यहाँ स्वर्ग तक छेद जाने वाले गीत (चुभने वाली प्रार्थनाएं) तेरे लिये लम्बे अयाल के घोड़ों की भाँति (सवार होने के लिये) भेजे जाते हैं। उस के पास शीघ्र आओ जिस ने (अपने अस्तित्व का) रस तेरे लिये निचोड़ लिया है। आ, मेरे हृदय में बैठ, और मेरे जीवन की मदिरा (सोम) पान कर।

मनुष्य अपना सारा समय इन क्षुद्र भय और फिकरों में ही नष्ट करनेके लिये नहीं बना है, कि "हाय मैं कैसे जीवित रहूँगा, और ओह ! मेरा क्या होगा, और ऐसी ही सब निरर्थक और मूर्ख बातें"। उसे कमसे कम इतना स्वाभिमान तो अवश्य ही होना चाहिये जितना मछलियों, पक्षियों और वृक्षों तक को भी होता है। वे आँधी या धूप की शिकायत नहीं करते, वरन् प्रकृति से एक होकर जीवन व्यतीत करते हैं। मेरी आत्मा वा मैं स्वयं ही झड़ी लगाने वाली वर्षा हूँ। मैं चमकता हूँ। मैं गरजता हूँ। मैं कैसा सुन्दर डरावना और बलवान हूँ। 'शिवोहम' के गीत हृदय से वेग के साथ निकलते हैं।

"आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥
भागीरथी निर्झर शीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः।
यद्वायुरन्विष्ट मृगैः किरातैः आसेव्यते भिन्न शिखण्डिबर्हः॥"

कोई भी दिन वा रात्रि बिना जल की एक आध बौछार के नहीं व्यतीत होती। और जैसा कि ऊपर दिये हुये कालिदास के श्लोक में वर्णित है, राम प्रतिदिन जब पहाड़ी पर चढ़ता है तो बौछारों से पकड़ लिया जाता है। परन्तु अड़ोस पड़ोस में गुफ़ाओं के न होने के कारण उसे उन्हीं मेघों को अपना छाता बनाना पड़ता है, और बौछारों को अपनी ही समझ कर उन से आनन्द लेना होता है।

दूसरे श्लोक में वर्णित देवदारु और सनोवर के वृक्ष धन्य हैं, जो कि यद्यपि थर्राते और काँपते हैं परन्तु गंगा जल की फुहार की शीतल बौछार के लिये अपने शरीरों को ढालवत् करते हैं।

हमारे लिये इस भयङ्कर शीत और तूफ़ानी सौन्दर्य्य के सम्मुख अपनी छाती खोलने का कैसा सुन्दर सौभाग्य है।

दृश्य (४)

सहस्र तारु-ताल की यात्रा।

जुलाई १६०६

"सप्तर्षि हस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान् परिवर्त्तमानः।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोध यत्यङ्‌घ मुखैर्मयूखैः॥"

So far aloft, Amid Himalayan steeps,
Couched on the tranquil pool the lotus sleeps
That the bright Seven who star the Northern sky,
Cull the the fair (blossoms) from their seats on high;
And when the sun pours forth his morning glow.
In streams of glory from his path below,
They gain new beauty as his kisses break,
His darling's slumber on the mountain lake.

अर्थ—इतनी दूर हिमालय की ढालों के बीच २
शान्त सरोवर की शय्या पर कमल शयन किये हुए हैं।

जिस से प्रकाशमान् सप्त ऋषि जो उत्तरी आकाशमंडल
में चमक रहे हैं,
अपने ऊँचे स्थानों से सुन्दर कलियों को चुन रहे हैं।
और जब सूर्य अपनी प्रभात की प्रभा को
अपने मार्ग से नीचे की ओर तेज धाराओं द्वारा डालता है।
और यों ही उस का चुम्बन पर्वत की झील पर शयन किये
हुए कमल की प्यारी निद्रा को तोड़ता है, तो उन कलियों
में एक नवीन सुन्दरता आ जाती है।

हमारा समय प्रायः आकाशवत् ऊँचे पर्वतों पर अनेक मीलों तक यात्रा करने में, भोजपत्र के वृक्षों तथा लताओं के लहराते जङ्गलों को जो दूर तक नीचे फैले हुए थे, और जिन जंगलों की दायीं और बांई ओर पुष्पों से पूर्ण ढालें थीं, उन्हें देखने में; नर्म मखमली घास से ढके हुये विस्तीर्ण मैदानों पर नंगे पैरों से टहलने में कि जहाँ छोटे २ प्यारे २ फूल तुम्हारे पैरों में फँस कर अँगूठों में अटक जाते हैं; दूर की कैलास शिखर पर से झरते हुये झरनों का रुपहला दृश्य देखने का आनन्द भोगने में; तुम्हारे सम्मुख बिजली की गति से उछलते हुये छोटे २ चतुर मुश्क वाले हिरनों को ध्यान पूर्वक देखने में कि जिन पर चन्द्रमा भी अच्छे दौड़ने वाला समझ कर सवार हो सकता है; कभी २ इधर उधर गरुड़ों (शाही पक्षियों) के अपने रंगीन बड़े २ परों की फड़फड़ाहट से चकित होने में; कभी कभी कैलाश के कमल अर्थात् ब्रह्म कमल, जिन की प्यारी पंखड़ियों में सोना और सुगंधि मिली होती है, उन्हें चुनने की इच्छा करने में; कुल्ली लोग जो बढ़ बढ़ कर मासि, लेसर, गुग्गल तथा भाँति २ के सुगंधित पदार्थों को, जो कि वहां बहुत थे—खोदते थे—उन के ऐसे कर्म पर

प्रसन्न होने में; स्तोत्र गाने, तथा ओम् (प्रणव) उच्चारण में व्यतीत होता था। इस सांसारिक जीवन की भीड़ भाड़ से बहुत ही दूर; गहरी और विस्तृत नीली झीलें, अपनी चमकती हुई सतह में, कैलाश की पवित्र और स्वतन्त्र वायु में लहराती हुई; पवित्र निर्मल वर्फ़ से घिरी हुई, मानों चमकते हुये उदय होने वाले सूर्य्य के ही मुख के सम्मुख शीशा दिखाती हैं। सूर्य्य अपने मनोहर तेज वा प्रताप का आनन्द ऐसे ही उत्तम एकान्त में शान्ति से लूटता है। ऐसी उँचाइयों पर किसी ग्राम वा झोंपड़ी की आशा नहीं की जा सकती थी। रातें गुफाओं में, जहाँ पवन मानों सोती रहती है, व्यतीत की जाती थीं।

आह! झुल्साने वाले देहाध्यास के नीरस मैदानों को पीछे छोड़ देने का कैसा आनन्द था! आह! धूप और पवनों के साथ अभेद होने की कैसी प्रसन्नता थी! आह! एकमेवाद्वितीयम् (द्वैत रहित एकत्व) के सघन, अनन्त स्वर्गीय वनों में घूमने में क्या ही आनन्द था!

एक पत्र।

प्रतिष्ठा लाभ करने वालो, विद्या प्राप्त करने वालो, सामाजिक सुधारको, प्रिय श्रम जीवियो! आप ने बहुत अच्छा किया! ईश्वर (एम) तुम्हें आशीर्वाद देता है। चलते चलो प्यारो! बढ़ते चलो! आशा और उत्साह पूर्वक अपने अपने कर्तव्य का अनुसरण करो। ईश्वर करे आप के परिश्रम का परिणाम बहुत सी सफलता से पूर्ण हो, आप अपने २ विशेष ध्येयों तक सही सलामत पहुँच सकें, और प्रत्येक ठहरने के स्थान पर प्रसन्नता आप का स्वागत करे। परन्तु राम का क्या होगा? राम ने भिन्न स्थान का टिकट

लिया है। वह यात्रा भंग नहीं कर सकता, और किसी बीच के पड़ाओ (ठहरने के स्थान) पर बहुत देर विश्राम नहीं कर सकता। प्यारों! नमस्कार! अन्तिम स्थान! ऐ कभी न अन्त होने वाले अन्तिम स्थान! तुझे नमस्कार।

Creating the earths and heavens and birds and beasts.
Who enters these as life and soul ;
And from the husk of body and mind.
Is thrashed out with devotion and Jnana.
That Being clothed in forms and names !
That selfsame *Sat* art thou, the same, the same.

2

Diverting the thoughts from objects of sense.
Like horses whipped when going astray ;
Controlling the thoughts with wisdom's reins,
The sages bring them home to Om ;
That Home or Om art thou no doubt the same.

3

The manifold changes—waking, sleep,
Boyhood, manhood, health, disease,
Failure, success, gain or loss,—
Are flowers simply strung on thread ;

That changeless thread, the one in all,
Is Atman pure without a knot,
That Atman pure art thou, the same the same.

4

That Being shining in the sun is no other than myself;
That Self in me is certainly the Being shining in the Sun;
By such texts the Vedas preach
The Light of lights, the Self-Supreme;
That Self art thou; yea! same, the same.

5

Anxieties, doubts and fears and all
Temptations, dangers, weakness are
Dispelled and driven out like the dark,
Of thousand years when Light appears.
The Light to drive out sorrow, sin,
Is consciousness of self within.
That Consciousness or Self art thou,
Indeed the same, the same,

6

The same that works thy eyes and hands
The same doth move what by thee stands,
The One within is all without,
That One does bring what comes about
No foreign force, no foe, no other
Exists by thee whatever
Is, art thou; Verily the same, the same.

अर्थः—पृथिवी-आकाशों, और पशुपक्षियों को रच कर
कौन उन में प्राण और आत्मा बन कर प्रवेश करता है ?
और शरीर तथा मन के कोश से भक्ति और ज्ञान
द्वारा कौन प्रकट होता है ?

वही **तत्व** जो नाम रूप धारण किये हुए है
वही **सत्य** स्वरूप तू है, वही तू है, वही तू है।

(२)

इन्द्रियों के विषयों से वृत्तियों को ऐसे हटा कर
जैसे कुमार्ग-गामी अश्व को कोड़ा लगा कर सनमार्ग
में लगाया जाता है,
और वृत्तियों को बुद्धि की लगामों से वश में करके
ऋषि लोग उनको निज धाम रूपी ॐ में लाते हैं।
वह **धाम** या ॐ निश्चय करके तू ही है, तू ही है।

(३)

नाना प्रकार के परिवर्तन, अर्थात् जागृत, स्वप्न
बाल्यावस्था, युवावस्था, स्वास्थ्य, रोग, असफलता,
सफलता, लाभ या हानि,—
धागे पर पुरोये हुए पुष्प मात्र हैं।
वह निर्विकार धागा, जो सब में एक ही है,
बिना ग्रन्थि के पवित्रात्मा है।

(४)

वह शुद्धात्मा तू है, वही तू है, वही तू है।
वह **पुरुष** जो सूर्य में प्रकाशमान है, मेरे से भिन्न नहीं है।
मुझ में आत्मा निःसन्देह वही है जो सूर्य में प्रकाशमान
पुरुष है;
ऐसे वाक्यों द्वारा वेद शिक्षा देते हैं,

हे ज्योतियों की ज्योति, परमात्मा !
वह आत्मा तू है, हां वही तू है, वही तू है।

(५)

जब आत्म-ज्योति उदय होती है, तो हज़ारों वर्षों के
अन्धकार के समान चिन्ता, संशय, भय और
समस्त लोभ, संकट, दुर्बलता एक दम हट कर
दूर हो जाती हैं।
शोक और पाप को निवरण करने वाली ज्योति
अन्तरात्मा का ज्ञान है।
वह अन्तरात्मा या आत्मज्ञान तू है,
निःसन्देह वही तू है, वही तू है।

(६)

वह जो तेरे चक्षु और पाणि को चलाता है,
वही तेरे समीपस्थ वस्तुओं को हिलाता है।
वही एक भीतर और बाहिर है।
और जो कुछ होता है, वही एक करता है।
न कोई अन्य शक्ति है, न शत्रु है,
जो कुछ भी स्थित है तेरे से भिन्न नहीं है।
वही तू है, ठीक वही तू है, वही तू है।

जब संसार को परमात्म स्वरूप की दृष्टि से देखा जाय तो समस्त जगत सौन्दर्य्य का बहाओ (उत्सर्ग), प्रसन्नता का प्रकटीकरण तथा परम-आनन्द की वर्षा सा प्रतीत होता है। जब परिच्छिन्न दृष्टि बन्द हो जाती है, तो कोई पदार्थ कुरूप नहीं रहता। जब प्रत्येक वस्तु मेरा अपना ही आत्मा है, तो कोई वस्तु माधुर्य स्वरूप के अतिरिक्त दूसरी हो कैसे सकती है ? आत्म ही आनन्दस्वरूप है, अतः

आत्मानुभव ऐसा है जैसा कि समस्त आनन्द घन विश्व का अनुभव, अथवा प्रकृति की शक्तियों का अपने ही हाथ पैर समझना और विश्व को अपना ही प्यारा आत्म-स्वरूप अनुभव करना है।

ओ आनन्द! तुझ से इतर कुछ नहीं।

"No warder at the gate
Can keep the *Jnani* in;
But like the sun over all
He will the castle win
And shine along the wall."

He waits as waits the sky,
Until the clouds go by,
Yet shines serenely on
With an eternal day,
Alike when they stay.

अर्थः—"कोई द्वारपाल ज्ञानी को भीतर नहीं रोक सकता।
वह सर्वोपरि सूर्य के समान दुर्ग पर विजय पालेगा,
और उस की भीतों पर प्रकाश डालेगा।

वह ऐसे वाट देखता है जैसे कि आकाश
मेघों की निवृत्ति तक देखता रहता है,
तथापि शान्तिपूर्वक
वह अक्षय दिवस के साथ
उन (मेघों) की उपस्थिति
और निवृति में समान चमकता है।"

हे भगवन्! विश्व का शासन कौन करता है? ईश्वर के

अतिरिक्त और कोई नहीं। क्या कोई बात ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध हो सकती है? कभी नहीं। सब ठीक है। उन्हें चालबाज़ियों, उपायों और साधनों की शरण लेने दो जिनके लिये संसार वास्तविक है। ईश्वर है, और ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है! यही उसकी महिमा है!

यदि मन में एक पल मात्र भी शरीर-रक्षा का भाव आ जाता है, तो इस देह और मन दोनों को क्षीण (भस्म) कर दो। मेरे शरीर करोड़ों हैं, मेरा आत्मा ईश्वर है, उसे रक्षा की आवश्यकता नहीं।

बाहरी चट्टानें कोई ऐसी नहीं जो टूटें। केवल मैं ही एक चट्टान हूँ, विश्व की चट्टान हूँ।

अल्प-दृष्टि वाले अदूरदर्शी लोगों के झिलमिलाते हुये तारों को हमारा ध्यान तनिक भी विचलित न करने देना चाहिये।

One person saw a dream, a nightmare
His neighbours' gan to scream! Look there!

He weeps at no disaster,
I can't suspress a laughter.

अर्थः—किसी मनुष्य ने एक भयानक स्वप्न देखा
उस के पड़ोसी चल्लाने लगे, देखो! देखो!!
वह व्यर्थ रो रहा है,
मैं हँसी नहीं रोक सकता।

यदि कभी कोई ऐसा व्यक्ति हुआ है कि जो सब जीवों को अपने अन्तः हृदय से अपने ही आत्मा की नाईं प्यार करता है तो वह राम है। सम्भव है कि मेरे बच्चे मुझे न समझें किन्तु

मैं तब भी उन का अपना शान्त, प्यारा और पवित्र आत्मा रूप 'राम' हूँ।

ब्रह्म मीमांसा दर्शन के अद्वैत—वाद पर एक टिप्पणी।

ब्रह्म सूत्र की भिन्न २ टीकाओं के सापेक्षक अध्ययन से इस बात में सन्देह नहीं रहता कि 'शंकर' की ही प्रणाली 'सूत्रकार' के भावों की सच्ची प्रतिपादक है। दर्शन के केवल युक्ति पूर्ण विभाग अर्थात् अध्याय २, पाद २, अन्तिम अधिकरण के ४२ से ४५ वें तक के सूत्रों में वह भागवतों के मतों का खण्डन करते हैं। वैष्णव टीकाकार शंकर के अनुकल यह मानते हैं कि ४२-४३ वें सूत्र उस प्रणाली के विरुद्ध आपत्ति उठाते हैं। अधिकरण का अन्तिम पैंतालिसवाँ सूत्र इस प्रकार है:—

'विप्रतिषेधाच्च'

यह पहले दिये हुये अन्तिम सूत्र के सादृश है जिस से अन्त में सांख्य का खंडन होता है।

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम्। (II २-१०)

अतः अपने से पहले के उसी पाठ के दसवें सूत्र की नाईं यह पैंतालीसवाँ सूत्र पञ्चरात्र प्रणाली में विरोध दर्शाने के अतिरिक्त और किसी बात के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता। इस के अतिरिक्त समस्त पाद केवल तार्किक होने के कारण और सब कहीं किसी एक भी स्थान पर श्रुति प्रमाण न दिये जाने से वैष्णव टीकाकारों को कोई अधिकार नहीं

कि वे अन्तिम सूत्र का इस प्रकार अर्थ लगाएँ कि उस में श्रुति से विरोध प्रतीत न होता हो। इस भाँति अन्तिम सूत्र पूर्ण रूप से भागवत प्रणाली को अस्वीकार करता है। अब हम चवालीसवें सूत्र की ओर आते हैं। वह यों है:—

विज्ञानादि भावे वा तत् प्रतिषेधः

उस से पहले के दो सूत्र ये हैं:—

उत्पत्त्यसम्भवात् ॥ ४२ ॥

और

न च कर्त्तः करणम् ॥ ४३ ॥

जो कि उस प्रणाली के विरुद्ध ज़ोरदार तार्किक आपत्तियाँ पेश करते हैं, और समस्त पाद में पहले से लेकर ४३ वें सूत्र तक जो नियम या ढँग के रूप में आपत्ति जनक समालोचना या आक्षेपपूर्ण आपत्तियाँ ही सारांश रूप से प्रत्येक सूत्र में भरी पड़ी हैं, शंकराचार्य स्वभावतः ४४वें सूत्र के 'तत' को पहले वाले ४२ या ४३ वें सूत्र में उठाई गई आपत्ति का प्रतिपादन करने वाला समझता है जिस का समर्थन भी पैंतालीसवें सूत्र द्वारा यथेष्ट हो जाता है। दूसरी ओर श्री रामानुज और अन्य लोग 'तत' से अभिप्राय केवल भागवत् प्रणाली लेते हैं और उस सूत्र को, जो पहले दिये हुये दो सूत्रों में के पूर्व पक्ष का खण्डन करता है, वह सिद्धान्त समझते हैं। यहाँ कोई भी सावधान प्रेक्षक तुरन्त देख लेगा कि सूत्रकार ने जहाँ कहीं पूर्व पक्ष का निषेध किया है वहां उस ने 'वा' नहीं किन्तु 'तु' शब्द का प्रयोग किया है। फिर भी आपत्तियाँ तीन सूत्रों में दी हुई होने के कारण सिद्धान्त में केवल एक सूत्र और वह भी अन्तिम नहीं हो सकता। इस के अतिरिक्त जब ४४ सूत्रों में पूर्ण रूपेण खण्डन और आपत्तियाँ ही की गई हैं, तो

सूत्रकार अपनी तार्किक शक्ति की तुलना वा समता केवल एक ४४ वें सिद्धान्त सूत्र द्वारा नहीं कर सकता। वहाँ उस की आवश्यकता भी न थी, सिद्धान्त तो पूर्ण रूप से पहले ही अध्याय में विस्तार पूर्वक निश्चय किया जा चुका था।

आगे चलकर, उस अस्वाभाविक अर्थ द्वारा जिस से श्री रामानुज अपने चवालीसवें सूत्र का समर्थन करने का प्रयत्न करते हैं, अपनी इच्छा के विरुद्ध वह स्वयं अद्वैत वेदान्त में जा पड़ते हैं। माधव प्रणाली सूत्रों की टीका सब जगह पौराणिक सिद्धान्तानुसार करती है, और यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि सूत्रोंका उद्देश्य पुराणों की व्यवस्था करना नहीं वरन् वेदिक उनिपदोंकी व्यवस्था करना है।अनुभाष्य रामानुज का अनुकरण करता है। किसी भी निष्पक्ष और न्यायकर्त्ता के लिये, सूत्र शंकराचार्य के अतिरिक्त और किसी प्रणाली को स्थान नहीं देते, उन्हीं का भाष्य प्राचीनतम और सर्वोत्तम है।

राम की व्यक्तिगत सम्मति के अनुसार, यदि सुत्रकार किसी अन्य वात की भी वास्तव में शिक्षा देता, तो भी अद्वैत की कोई हानि न होती, परन्तु यह उस के लिये अवश्य प्रशंसात्मक वात है कि उस ने उसे भली भाँति समझ लिया और फिर किसी अन्य वात की शिक्षा न दी। प्रामाणिक उपनिषदें देवसेन (Deussen), गफ़ (Gough), थीवाट (Thibaut) इत्यादि प्रेक्षकोंके मतानुसार भी शंकराचार्य की ही प्रणाली का समर्थन करती हैं। श्री शंकराचार्य भागवतों के सम्बन्ध में वहुत आदर सत्कार पूर्वक ज़िक्र करते हैं। और उनकी प्रणाली में विशेषता यह है कि वह न केवल सब वेदिक मूल मंत्रों को ही भली भाँति समर्थन करते हैं, वरन् अपनी अद्वैत स्थिति को न छोड़ते हुये सब प्रणालियों को उन के योग्य

वहां स्थान भी दे देते हैं, यह कार्य्य और कोई ऐसी सुन्दरता पूर्वक नहीं कर सका। वह शान्ति के खोजने वालों को शुद्ध अर्थात् निष्काम कर्म करने की अनुमति देते हैं। वे भक्ति का समर्थन करते हैं और परमेश्वर को उस के अखण्डनीय गुणों में ही वर्णन करके महत्वपूर्ण स्थान देते हैं।

द्वैतवादी लोग दूसरी ओर उनके अद्वैतवाद को नहीं ग्रहण कर सकते।

राम संहिता के मन्त्रों का पाठ करता है। आह! कैसा उच्च और आनन्दप्रद अध्ययन है! देवता, यज्ञ और सोमके नामों तथा और प्रयोगिक शब्दों को राम खास अपने अर्थों में उन्हें लेता है यद्यपि वे अर्थ उन शब्दों के धातुओं से उत्पन्न होते हैं। इस भाँति राम के लिये संहिताएं वेदान्त के स्तोत्रों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। राम हाफ़िज़, मीर ख़ुसरो, और अन्य फ़ारसी कवियों की कविताएं पढ़ता था, और उन में शब्द 'मय', 'ज़ुल्फ़', 'साक़ी' को एक विचित्र धार्मिक अर्थ देकर पढ़ा करता था, और उस के लिये समस्त दीवान आध्यात्मिक आनन्द से भरपूर होता था। वैदिक मन्त्र निस्सन्देह बहुत सीधे और मार्मिक हैं।

ईसाइयों की बाइबल की प्रायः उतनी ही टीकाएं हैं जितनी पीढ़ियों में से वह गुज़र चुकी है, और उस में शुद्ध वेदान्ती अर्थ भी कम नहीं हैं। इसी भाँति प्रत्येक जीवित धर्म ग्रन्थ की टीकाएं उस का उपयोग करने वाले लोगों की अपनी आध्यात्मिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये की गई हैं।

राम कभी २ अनुभव करता है कि वेद विशेष कर राम ही के लिये निर्मित हो कर परम्परा से सुरक्षित चले आए हैं। परन्तु दूसरों के लिये किसी को वेदों के शब्दों और

मन्त्रों को उन के परम्परागत, प्रारम्भिक अर्थों को बदल कर उसके अपने अर्थ न करने चाहिये, चाहे उसे अपनी टीका कैसी ही प्रशंसनीय क्यों न प्रतीत होती हो।

जब तक कोई धर्म-ग्रन्थ लोगों की आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं करता, वह जीवित नहीं रह सकता। और जैसे २ लोग विकास वा उन्नति के मार्ग में बढ़ते जाते है, धर्म ग्रन्थों के अर्थ भी उनके साथ २ अवश्य बढ़ते जाते हैं।

——o.——

(राम की रफ़ कापी में से)

लोग बहुत अविवेक के साथ काम करते प्रतीत होते हैं; एक अनिश्चित, अप्रत्यक्ष रूप की भांति व्यवहार करते, और अपनी ही भलाई न समझते हुये दिखाई देते हैं; और पूर्ण रूप से अस्थिर हैं, और यह क्यों? इस लिये कि संसार एक स्वप्न से अधिक कुछ नहीं। आप स्वप्न के पदार्थों में निस्सारता, धुँधलापन, अस्थिरता और कम्पित रेखाओं के अतिरिक्त और क्या आशा कर सकते हो?

* * * *

जीवनमुक्त वह पुरुष है जिस में साधारण, क्षणिक उत्तेजना पूर्ण भावों का अभाव है। अतः वह किसी भांति भी उन भावों के अधीन नहीं किया जा सकता।

वह मनुष्य जिस पर हानि लाभ, मित्रों की अनुमति, फ़ायदा, नुक़सान, शिष्यों की वार्तालाप, विरोधियों के कुटिल संकेत और किसी प्रकार का अचानक समाचार प्रभाव डाल सकता है, वह नेता होने के अयोग्य, और पथ-प्रदर्शन में

असमर्थ है। उस के अनुभव की स्थिति नीच है और वह एक भयानक स्थिति में है।

ला इलाह इललिल्लाह

* * * *

जब तक उदारता (Magnanimity) हमारे लिये स्वाभाविक नहीं हो जाती, हम ईश्वर को अनुभव नहीं कर सकते। संकुचित मन (अर्थात् तंग दिल वाले) के लिये परमात्मा के अनुभव की आशा नहीं। कृपण को शान्ति नहीं, और तिस पर भी वाह्य सम्बन्ध हमारे ऊपर ऐसे विचार ठोंस देते वा ठेल देते हैं कि हम परिच्छिन्न सीमा (परिच्छेदों) में घिर जाते हैं। उदारता ही नियम वा सिद्धांत होना चाहिये, किन्तु तब भी संसार हम में उस के विरुद्ध भाव उत्पन्न करता है। मेल कैसे मिले? उदारता ही चरित्र का नियम होना चाहिये, और वह तभी देखा और दृढ़ किया जा सकता है जब हम अन्तः हृदय से केवल ईश्वर की वास्तविकता पर विश्वास करें, पड़ोसियों द्वारा उनके प्रतीत होने वाले रूपों को अस्थिर जानते हुये आचरण करें।

* * * *

सौन्दर्य्य

आओ, मैं तुम्हें ईश्वर के दर्शन कराऊँगा।

उस चेहरे की ओर देखो, जो भोला भाला प्रतीत होता है। वही सौन्दर्य्य है। पवित्रता, त्याग, आश्चर्य, उदासीनता तथा इन्द्रियों के विषयों का त्याग ही सौन्दर्य्य बनाता है। आध्यात्मिक वा भौतिक आकर्षण सदैव पवित्रता वा भोलापन के ही परिमाण में होता है। श्वेत प्रकाश से निकले हुये

रँगोंकी मनोहरता भी पूर्ण रूपेण त्याग और आत्म-समर्पण पर ही निर्भर है। वही रंग जिसे हम किसी पदार्थ का समझते हैं ठीक वही उस वस्तु द्वारा त्यागा जा चुका है। श्वेत और प्रकाशवान वह पदार्थ है जिस ने सब रंग त्याग दिये हैं।

प्रेम-पात्र होना भी अधिकार-विहीनता(claimlessness) के ठीक परिमाण में होता है, जैसे शिशु और बच्चे में।

अब उसी ओर देखो, सीधे देखो, और ऐसी गहरी दृष्टि पात करो, कि सौन्दर्य्य रेखा और पदार्थ-रेखा जैसा कि एक दूसरेकी ओर वे झुकती हैं वैसा झुक कर, उसी एक बिन्दु (ईश्वर) पर मिल जावें। तुम्हारे पर लानत (धिक्कार) हो, यदि आप मार्ग में ही गिर पड़ो।

जिसे हम मूर्खता वश 'सुन्दर वस्तु' कहते हैं, जब उसे हम एकाग्र हो कर देखने लगते हैं, तो इस से भौतिक सौन्दर्य्य उसी प्रकार हानि को प्राप्त होता है, जिस प्रकार आध्यात्मि सौन्दर्य, यदि मनुष्य हमारी प्रशंसा वा स्तुति पर विश्वास करे तो।

अधिकार-भाव के त्याग से पारदर्शकता परिणाम में आती है। किसी भी चेहरे पर अपना अधिकार आरोपने से आप उसे कुरूप बना देते हैं। इस भांति आप एक गड्ढा खोद कर उस में गिर जाते हैं। अपने आप को और उस नाम मात्र के सुन्दर पदार्थ को मत धिक्कारो। उस से परे देखो, ईश्वर देखो, दिखावे के परदे को फाड़ डालो, उस में से देखो और **राम** को देखो।

सांसारिक बुद्धिमानों की प्रणाली निर्माण करने वाली बुद्धि और संगठन करने का जाना बूझा परिश्रम वैसे ही

निरर्थक और निकम्मे हैं जैसे कि विद्यार्थियों के लिये 'टाड के स्टूडेण्टस मैनुअल' में दिये हुये अस्वाभाविक और भ्रम पूर्ण उपदेश। यदि शिशु जीवित है तो शरीर का डील डौल आप ही आप बढ़ता और उन्नति करता है, इसी प्रकार आप को जीवित रहने या ईश्वर के साथ एक होने की आवश्यकता है, और आप अपने आस पास आप ही आप सङ्गठन को बनते हुये देखोगे।

यदि आप सांसारिक मनुष्यों के साथ सहानुभूति दिखाने की ओर झुक जाते हो और उनकी शर्तें मान लेते हो, तो आप को ईश्वर के साथ क्यों न सहानुभूति करना और उस की बात मानना चाहिये? वह काफ़ी ग़रीब है, उस के अतिरिक्त उस के पास और कुछ नहीं, और वह एक अनाथ है (उसके माता पिता नहीं)।

—— o ——

कैलिफोर्निया, कैसिल स्परिंग

मेरे प्रियतम प्रेम-आत्मा! जून ११. १९०३

क्या कुछ कहने या लिखने की आवश्यकता है? राम प्रत्येक वस्तु जानता है, अर्थात् आप सब कुछ जानते हो, किन्तु इतने पर भी राम आप को कुछ ऐसी बातें बताएगा जो यहाँ हाल ही में अनुभव हुई हैं, और जिन से राम को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। राम को प्रत्येक बात आनन्द लाती है।

१९ मई को, जब कि राम नदी तट पर एक चट्टान पर लेटा हुआ था, राम के पास डाक्टर हिल्लर के बंगले के प्रबंधक ने एक सुन्दर झूला (पालना) ला कर दिया जिसे अचानक एक मित्र ने स्याटल (Seattle) से भेजा था। वह तुरन्त ही

एक हरे सिन्दूर और एक लाल देवदारू के वृक्ष के बीच में हवा में ऊँचे पर लटका दिया गया। उमँडते हुये आनन्द और खिलखिलाकर हँसने के साथ ही राम ने अपने आप को उस लटके हुये पलंग पर लुढ़का दिया। शीतल मंद सुगंध पवन इधर उधर से राम के ऊपर चलने लगी। नदी अपनी ओ३म् ध्वनी गाती हुई जाती थी। राम हँसता हँसता लोट पोट होता था। क्या आप ने उसे सुना? एक चेहचेहाती हुई 'रोबिन' राम को ऊपर देख रही थी जब कि वह इधर से उधर झूल रहा था। सम्भवतः उसे राम से ईर्ष्या थी। क्या सचमुच उसे थी? नहीं, यह नहीं हो सकता, प्रत्येक रोबिन, गौरय्या, या बुलबुल राम को अपना ही समझती है। कुछ भी हो,जब राम ने अपने भीतर के निरंकुशित (स्वतः फूटने वाले) आनन्द को नाचने कूदने में निकालने के लिये पालने को कुछ देर के लिये छोड़ा, सुन्दर रोबिन उस प्यारे अवसर पर, चुरा कर एक बार झूला झूलाने के लिये, पालने पर आ बैठी। कहो, क्या राम के छोटे पक्षी पुष्प-विलासी, सुखी और स्वतन्त्र नहीं हैं?

२० मई, मध्याह्न—यूनाइटेड स्टेट्स के प्रेसिडेण्ड उत्तर जाते समय मार्ग में स्प्रिङ्गस (springs) के पास भी कुछ देर के लिये ठहरे। स्प्रिङ्गस कम्पनी की एक प्रतिनिधि महिलाने सुन्दर पुष्पों से भरी टोकरी उन्हें भेंट की और इसके पश्चात् तुरन्त ही उन्होंने राम की **भारतके लिये अपील** बहुत प्यार, आदर और प्रसन्नता से स्वीकार की। उन्हों ने समस्त समय वह पुस्तक अपने दाहने हाथ में रक्खी और जब वे लोगों के अभिवादन का उत्तर देते, तो वह पुस्तक स्वाभाविकता और आप ही आप कम से कम सौ वार उन

के मस्तक तक उठी थी। जब गाड़ी चली, तो वह अपनी गाड़ी में उसे ध्यान पूर्वक पढ़ते हुये. दिखाई दिये और एक बार फिर चलती हुई गाड़ी पर से हाथ हिला कर **राम** को उन्हों ने धन्यवाद दिया।

परन्तु देखो! राम ने प्रेसिडेण्ट को उस कवितामय पालने पर झूलने का आनन्द उठाने को कभी आमन्त्रित नहीं किया। क्या आप अनुमान कर सकते हैं, ऐसा क्यों नहीं किया? कृपया अनुमान करिये। अच्छा, आप चूंकि बोलते नहीं हो, अतः राम आप को बता देता है। कारण काफ़ी स्पष्ट है। नाम मात्र के स्वतन्त्र अमरीकनों का प्रेसिडेण्ट राम के पक्षियों और पवन से सहस्रांश भी स्वतन्त्र नहीं है।

आप प्रेसिडेण्ट की कुछ चिन्ता न करो। आप स्वतन्त्र हो सकते हो, राम की नाईं भी स्वतन्त्र हो सकते हो, और वायु तथा प्रकाश को अपने भक्त वा नौकर बना सकते हो। राम हो जाओ, राम आप को सब कुछ देगा, सूर्य्य, तारे, वायु सागर, मेघ, वन, पर्वत और क्या नहीं, सब कुछ देगा। प्रत्येक वस्तु आप की हो जावेगी। क्या यह एक प्यारा सौदा नहीं है? ऐ प्यारे! क्या ऐसा नहीं है? कृपया सब चीज़ें लो।

प्रभात चार बजे उषा वायु (Aurora) के चुम्बन से जगाए जाकर और स्वतन्त्र पवन द्वारा हँसाय जाकर तथा प्यारे चहचहाते हुये पक्षियों के प्रिय गानों द्वारा स्वागत (स्तुति) किये जाने पर राम गिरि-शिखरों और नदी तट पर टहलने जाता है।

आओ हम साथ मिलकर हंसें, बार २ खूब हंसें। आ मेरे बच्चे, सूर्य्य! राम की निर्भय मुस्कराती हुई आँखें देख,

और प्रकृति तथा राम के पास रह। मैं ही स्वयं आनन्द मग्न स्वरूप हूँ।

तुम्हारी आत्मा
राम,

हिमालय के बनों से (भेजा हुआ) एक पत्र।

दिन के पश्चात रात और रात के पश्चात फिर दिन बीते जाता है, और यहां आप का राम कोई काम करने का समय नहीं पाता, कुछ काम न करने में ही वह बहुत लगा रहता है, अति प्रवृत्त है। नेत्रों से अश्रु पात होते रहते हैं, और इस अति वर्षा वाले प्रान्त की वर्षा से यह ठीक बराबरी करता है। रोमाञ्च खड़े हो गए, नेत्र अपने सम्मुख की किसी भी वस्तु को देखते हुये खुले के खुले रह गए। वार्तालाप रुक गया, कार्य रुक गया, दुर्भाग्य से (?) नहीं, बहुत सौभाग्य से। आह! मुझे एकान्त छोड़ दो।

ओह प्यारे! इस गूंगे के आनन्द की तरंग के पश्चात आनन्द तरंगें कैसी लगातार उमड़ रही हैं।

Let it go on, O the
  Most delicious pain.
Away with writing,
  Off with lecturing.
Out with fame and name.
  Honours ? Nonsense.
Disgrace? meaningless.

अर्थः—ऐ अत्यन्त स्वादिष्ट पीड़ा!
तू ऐसे ही होती रहो

लिखने को हटाओ,
उपदेश करना छोड़ दो।
नाम और यश से परे हटो।
क्या सन्मान की इच्छा है? मूर्खता।
क्या अपमान का डर है? निरर्थक।
क्या ये खिलौने ही जीवन के ध्येय हैं? तर्क और विज्ञान बेचारे मूर्ख (अनाड़ी) हैं! उनको मुझे देखने दो और अपनी नेत्र हीनता की दवा करने दो।

In dreams a sacred current flows,
In wakefulness, it grows and grows.
At times, it overflows the banks
Of senses at the mortal frame.
It spreads in all the world and flows,
It inundates in wild repose.
For this the sun, he daily rose,
For this the universe did roll.
All births and deaths for this.
Here comes rolling, surging wonder, undulating Bliss.
Here comes rolling laughter, silence.

अर्थः—स्वप्न में आनन्द की पवित्र धारा बहती है,
जागृत में वही बढ़ती जाती है।
कभी २ यह इन्द्रियों और नाशवान शरीर
की सीमा से बाहिर वह निकलती है।
यह सारे जगत में बहती और फैल जाती है,
और उसे विचित्र विश्राम में लीन कर देती है।
इसी के लिये सूर्य प्रति दिन उदय होता है।

इसी के लिये विश्व भ्रमण करता है।
और जन्म मरण सब इसी के लिये हैं।
ये लो! यह लुढ़कती, विचित्र रूप से उमंड़ती और
लड़खड़ाती हुई आनन्द की तरंग आ रही है।
यह उमड़ता हुआ हंसी रूप मौन छा रहा है।

—o—

व्यावहारिक वेदान्त क्या है ?

Pushing, marching Labour and no stagnant Indolence;
Enjoyment of work as against tedious drudgery;
Peace of mind and no canker of Suspicion;
Organization and no disaggregation;
Appropriate reform and no conservatistic custom;
Solid real feeling as against flowery talk;
The poetry of facts as against Speculative fiction;
The logic of events as against the authority of departed authors;
Living realization and no mere dead quotation;
Constitute Practical Vedanta

अर्थः - धकापेल करता और बढ़ता हुआ परिश्रम, न कि जकड़ा हुआ आलस्य;

काम में आनन्द, न कि थकाने वाली बेगार ;
चित्त की शांति, न कि संशय रूपी घुन;
संगठन, न कि अस्त व्यस्त अवस्था;
उचित सुधार, न कि कट्टर (अपरिवर्तन शील) रीति रवाज;
सच्ची और पक्की भावना, न कि पुष्पित वाणी;
तथ्य भरी कविता, न कि कपोल कल्पित गल्प;
घटनाओं का न्याय, न कि मृतक लेखकों के प्रमाण;
जीता जागता अनुभव, न कि मुर्दा वाक्य-लेख;
इन्हीं का रूप व्यावहारिक वेदान्त है;
अथवा यही व्यावहारिक वेदान्त का रूप है॥

महावाक्य "अहम्ब्रह्मास्मि" (मैं वही-ब्रह्म-हूं) पर एकाग्रचित हो ध्यान, न कि व्यक्तियों और दलों के प्रसार और अस्त व्यस्त पर ध्यान, स्वभाव से ही शक्ति, स्वतन्त्रता और प्रेम में बदल जाता है। यह शरीर के रोम रोम में भरा हुआ अनन्त ईश्वरत्व, यह बलवान अद्वैत, यह शक्ति शाली भक्ति, यह प्रज्वलित प्रकाश ही है जिसे शास्त्र अचूक (अटल) 'ब्रह्म शर' कहते हैं।

अरे हिलने डुलने वाले, चञ्चल, संशयात्मक चित्तो! अब अधिक निरुत्साह भरा कट्टरपन (प्राचीन यथावलम्बन, orthodoxy) और नास्तिकता की आवश्यकता नहीं! सब संशयों और विषयों को जला दो, सब मत-मतान्तर तुम्हारी अपनी रचना है। चाहे सूर्य्य पारे की एक थाली दिखाया जा सके, चाहे पृथ्वी एक खोखला गोला सिद्ध की जा सके, चाहे वेद ईश्वर का श्वास न सिद्ध किये जा सकें, किन्तु तुम ईश्वर के अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ नहीं हो सकते।

तुम्हारे ईश्वरत्व से निकला हुआ एक शब्द (वाक्य) घास के तृणों, बालू के कणों, धूल के परमाणुओं, हवा के झोंकों, वर्षा की बूँदों, पक्षियों, पशुओं, देवताओं और मनुष्यों द्वारा भी स्वीकार किया जावेगा। वह अवश्य कन्दराओं और वनों में गूँजेगा, ग्रामों और झोपड़ियों में गूँजेगा, वह शहरों और सड़कों में अवश्य गूँजेगा, शहरों से होकर समस्त संसार को भर देगा, चकित (वा रोमाँच) कर देगा! ओह स्वतन्त्रता! आज़ादी!

नदी के गिरि-स्रोतों को सुनहरी वर्फ़ की चट्टानों के भारी कोप से भर दो, और उस की सारी शाखाएं, धारायें, और नहरें खेतों को आज़ादी से फलने फूलने निमित्त सींचती हुई भरकर वहेंगी। जीवन के निकास, प्रेम के उद्गम, आनन्द और प्रकाश के चश्मे को अपनी अनन्त शक्ति और पवित्रता, और ईश्वरत्व धारण करने दो, इस परिच्छिन्न आत्मा को अलग रखने दो, भावों से तर वतर होने दो अर्थात् मन को इन भावों से भरने दो, और हाथ, पाँव, नेत्र, नहीं नहीं, शरीर का प्रत्येक अवयव तथा आस पास के पदार्थ भी अवश्यमेव एकता का एक स्वर्ग निर्माण करेंगे और शक्ति का तूफ़ान जारी कर देंगे।

राज-सिंहासन पर राजा की उपस्थित मात्र ही दर्बार भर में शान्ति वा व्यवस्था स्थापन कर देती है, उसी प्रकार किसी मनुष्य का अपने ईश्वरत्व (निजी महिमा, स्वराज्य) पर स्थित होना ही समस्त जाति में जीवन और शान्ति स्थापन कर देता है।

हे अल्प विश्वासियों! जागो! अपने पूर्ण प्रताप में जागो! और अपनी शाही वेपरवाही की एक दृष्टि मात्र, अथवा अपनी

दिव्य लापरवाही की एक ओर से पवन भी अत्यन्त घोर नर्क को मनोहर स्वर्ग के रूप में परिवर्तित करने में काफी है।

निज घर आओ, निज़ घर आओ
ऐ भटकने वाले! निज घर आ
ॐ ॐ

ओ (निजानन्द की) मृदुपवनों! चलो! ऐ पवनों! इन शब्दों के साथ सम्मिलित हो जाओ जिन का तात्पर्य वही है जो कि तुम्हारा है।

ओ हास्य! ओ हास्य!
ओ अविनाशी आनन्द और हास्य!

"After long ages resuming the broken thread coming back after a long but necessary parenthesis—
To the call of the peacock in the woods,
Up with the bracken uncurling from the midst of dead fronds of past selves.
Seeing the sunrise new upon the world as lovers see it after their first night,
All changed and glorified the least thing trembling with beauty, all old sights become new, everything vivified and bathed in Divinity."

"Now, having learned the lesson, which it was necessary to learn of the intellect and of civilization, having duly taken in and assimilated and again duly excreted its results, once more to the great road with the animals

and the trees and the stars, travelling to return.
To other nights and days undreamt of in the vocabularies of all dictionaries."
O kisses of the sun and winds!
O joy of the liberated Soul (finished purpose and acquittal of conventionality),
Daring all things, light steps, life held in the palm of the hand!
At length the Wanderer returns Home,
All those things which have vainly tried to detain him.
When he comes who looks neither to the right nor to the left for any of them
Not being deluded by them but rather threatening to pass by and leave them all in their places just as they are,
Then rise up and follow him,
Through thorns and briars before—in his path, they now become fruits and flowers.
Not till he has put them from him does he learn the love and faithfulness that is in them.
Faithful for ever, more are they his Servants!
And this world is paradise!!!

अर्थः—"बहुत युगों के पश्चात्, एक दीर्घ किन्तु आवश्यक काल तक गाढ़ निद्रामें रह कर,(जन्म-मरण के) टूटे हुए क्रम को पुनः धारण करके

वनों के मोर की कूक को सुना (अर्थात् कूक में अपने को अनुभव किया)।

पूर्व जन्मों के जड़ शरीर रूपी पत्तों में से खिलती हुई कोंपल के रूप में (नवीन जन्म में) अपने को अनुभव किया।

जैसे प्रिया-प्रीतम दोनों अपनी प्रथम रात्रि के मिलाप के बाद सूर्य को विचित्र रूप से देखते हैं, वैसे ही संसार पर सूर्य के उदय होते नई महिमा देखी (अर्थात् अपने आप को सूर्योदय में विचित्र रूप से अनुभव किया) ।

सारा संसार पलट गया और मतलब पूर्ण हो गया, यहां तक कि छोटी से छोटी वस्तु से भी सुन्दरता झलने लगी; सारे पुराने दृश्य नये हो गये; प्रत्येक वस्तु चेतन स्वरूप व ब्रह्ममयी हो गई ।"

बुद्धि और सभ्यता से आवश्यक शिक्षा लेकर, उसे भली प्रकार समझ कर, अपने में धारण कर और उस के फलों को प्रकट करके अब पुनः वृक्षों, पशुओं और तारों के साथ में महा पथ पर पुनरागमन कर रहा हूँ।

ऐसी रात्रियों और दिनों में गमन कर रहा हूँ जिन का कोषों के शब्द-ग्रन्थों में पता तक नहीं।

ओ वायु और सूर्य के चुम्बनों !

ओ मुक्तात्मा (पूर्ण मन्तव्य और रीतिरिवाज से मुक्त) के आनन्द ।

सब बातों के करने का साहस करते हुए, सुलभ गामी, प्राण को हथेली पर रक्खे हुए,

अन्त में परिभ्रमक यात्री निज धाम को लौटता है।

जब वह लौटता है तो वह, उन समस्त वस्तुओं की ओर जो उस को लौटने से रोकने में व्यर्थ यत्न करती थीं, उन में से किसी के लिये भी दायें बायें दृष्टि नहीं डालता है ।

उन से धोखा खा कर नहीं किन्तु उन सब को अपनी २
स्थिति में छोड़ कर जान बूझकर गुज़र जाता है।
तब उठो और उस के पीछे हो लो,
क्योंकि उस के मार्ग के कांटे और झाड़ी
अब पुष्प और फल रूप हो गये हैं।
जब तक वह उन वस्तुओं का त्याग नहीं करता
तब तक उस प्रेम और भक्ति को जो उन में है वह
अनुभव नहीं करता है।
और वे पदार्थ उस के नित्य श्रद्धालु भक्त ही नहीं बल्कि
सेवकों से भी बढ़कर हैं
और यह संसार स्वर्ग है

मैं कौन हूँ ?

एक दर्पण लो और उस में मुझे प्रतिबिम्बित देखो। अपने भीतर एकान्त में प्रवेश करो और मुझे ही मौनशक्ति भान करो सूर्य्य की ओर दृष्टि उठाओ, और वहां मेरी आकृति देखो।

"निश्चय करके मुझे जानो, यही मनुष्य का सर्वोच्च लाभ है। मुझे जानो; जो कोई मुझे जानता है उस के भावी सुख में किसी भी कार्य्य द्वारा बाधा नहीं पड़ती। जो मुझे जानता है उस के चहरे की चमक कभी न मिटेगी"।

(उपनिषद)

तू जो कोई भी हो, जब तेरे नेत्रों की पलकें मेरे देखने को नीचे गिरती हैं तो तू धन्य है। वह स्थान भी धन्य है, जहाँ तू टहलता है, क्योंकि तेरी राम-दृष्टि के प्रभाव से वह स्थान स्वर्ग में परिवर्तित हो जायगा। मेरा घर सर्वत्र है।

तेरे हृदय में धड़कने वाला, तेरे नेत्रों में देखने वाला,

तेरी नाड़ी में चलने वाला, पुष्पों में मुस्कराने वाला, विद्युत में हँसने वाला, नदियों में गरजने वाला, और पर्वतों में शान्त रहने वाला यह सब राम है। ब्राह्मणत्व को दूर फेंक दो, स्वामी पने को जला दो, अपने को निज स्वरूप से भिन्न करने वाले पद और उपाधियोंको परे फेंक दो; ऐ प्यारे! राम तुम्हारे साथ एक है। तुम जो कोई भी हो, विद्वान या मूर्ख, धनी या निर्धन, नर या नारी, महात्मा या पापी, क्राइस्ट या जूडास, कृष्ण या गोपी, राम तुम्हारा अपना आत्मा (निज स्वरूप) है। मैं ने यह निश्चय कर लिया है कि तुम्हारे दिल में मेरा ईश्वरत्व तुम्हारा ईश्वरत्व होकर गरजे और वह आप के प्रत्येक कार्य या चेष्टा से प्रकट हो।

मुझे जर्मनी, इंगलैण्ड, अमरीका, भारत और सब को स्वतंत्र के लिये अवश्य हिला डालना है। मैं पुराने खेल से थक गया हूँ। हे स्वप्न में चलने वाले! क्या तू हिमालय की इस गर्ज को सुनता है? क्या तू कड़कती हुई उषा को अनुभव करता है? स्वतंत्रता! आज़ादी!

यह कोई निस्सार (झूठी) कल्पना नहीं है। राम जो तुम्हारे आत्मा का आत्मा है, यही चाहता है, और रामाज्ञा सर्व मान्य वा अमिट है।

स्वतन्त्रता! आज़ादी!

राम का मिशन (उद्देश्य) बुद्ध, मुहम्मद, ईसा और दूसरे नबियों, तथा अवतारों की नाईं अपने लाखों अनुयायी बनाना नहीं, वरन प्रत्येक स्त्री, पुरुष, और बालिक में स्वयं राम को प्रकट करना, जाग्रत करना तथा उत्पन्न करना है। राम के शरीर को कुचल डालो, इस व्यक्तित्व को भक्षण कर डालो, पीस डालो, और मुझे हज़म करके पचा जाओ, केवल तभी तुम राम के साथ न्याय कर सकोगे।

पत्र मंजूषा ।

श्री स्वामी शिवगणाचार्य्य जी

किशन गढ़ ।

नारायण,

डाक्टरों का कहना है कि जब तक हमें भीतर से भूख न लगे, हमें भोजन न करना चाहिये, चाहे वह कितना ही स्वादिष्ट और सुन्दर पदार्थ क्यों न हो, और हमारे कितने ही प्रिय मित्र और सम्बन्धी हम से भोजन के लिये आग्रह क्यों न करें। जो कुछ आप ने लिखा है वह नितान्त ठीक है। यदि मैं तुरन्त रवाना हो जाऊँ, तो आप की और किशन गढ़ रियासत के सुयोग्य प्रधान मन्त्री दोनों की सत्संगति का आनन्द लूटने तथा आप के सविवेक विचारों से लाभ उठाने का अवसर तो अच्छा है, परन्तु मेरी अन्तरात्मा की ध्वनि मुझे प्रतीक्षा करने की आज्ञा देती है और इस बात की भविष्य सूचना देती है कि जब मैं पूर्ण रूप से तैयार हो जाऊंगा, तब इस से भी अच्छे अवसर प्राप्त हो जायँगे। अपनी पहली असफलताओं से (यदि उन्हें असफलता कहा जा सकता है) मैं किञ्चित भी भयभीत नहीं हूँ, वल्कि पूर्ण आशा रखता हूँ कि मुझे अपने भविष्य जीवन में खूब सफलता प्राप्त होगी। जो कुछ मैं यहां कर रहा हूँ वह अवश्यमेव ठीक वही है जोकि हमारी किशनगढ़ की दोस्ताना सलाहों का नतीजा होता। हमें अवश्य अनुकूल अवसरों से लाभ उठाने के लिये सदैव चौकन्ना रहना चाहिये। परन्तु हमें किसी तरह से अधीर भी न होना चाहिये। केवल कार्य करने की ज़रूरत है। जिस से कि मैं अपने देश-वासियों में कार्य करने की शक्ति या वल का संचार कर सकूं। मुझे अपने में अवश्य अपरिमित शक्ति संचित करके कार्यारम्भ करना चाहिये। समय आने दो, आप निःसन्देह मेरे साथ होंगे।

यदि मुझे क्षुद्र बातों के सम्बन्ध में ही गड़बड़ करते नहीं फिरना है, किन्तु मातृ-भूमि की वास्तविक और स्थायी सेवा करना है और मुझे अपने आप को अपने देश के लिये कुछ लाभदायक सिद्ध करना है, तो मैं यह अनुभव करता हूँ कि मुझे कुछ और तैयारी की आवश्यकता है, जिस से मैं अपने आप को इस महान कार्य के समान योग्य बना लूँ।

मैं यहां शास्त्रों और पश्चिमी उच्चतम विचारों का गहन अध्ययन कर रहा हूँ और साथ ही साथ अपने स्वतन्त्र विचारों का भी अनुसरण कर रहा हूँ। मुझे इस अध्ययन-कार्य्य में अपना समस्त जीवन-काल नहीं व्यतीत करना है। जो कुछ मैं निरन्तर परिश्रम द्वारा प्राप्त करता रहा हूँ, मैं शीघ्र ही उसे मनुष्यों के हृदय और व्यवहार में ले डालूंगा या उन्हें दे दूंगा। मुझे पूरा भरोसा है कि यदि मैं चाहता तो इस से बहुत पूर्व ही देश भर में एक भयानक हलचल उत्पन्न कर दी होती, परन्तु मेरी भी ज़िमीर है, और मैं कभी भी न व्यक्तिगत गौरव, न लाभ, न धमकी, न भयंकर भय, और न ही मृत्यु के भय से ऐसी बात का उपदेश करूंगा कि जिसे मैंने स्वयं अनुभव न कर लिया हो कि वह सच्ची है।

यदि सत्य में कोई शक्ति है—जैसा कि निःसन्देह वह एक अनन्त शक्ति है,-राजा तथा साधू, कुलीन तथा साधारण जन सब को अवश्यमेव स्वामी रामतीर्थ द्वारा स्थापित सच्चाई के झण्डे के सम्मुख शिर झुकाना और उस के अनुकूल चलना पड़ेगा। मैं इस कार्य्य के लिये योग्यता विशेष रखता हूँ और यदि शीघ्रता या अधीरता से मैं अपने आप को किसी न्यून कार्य्य में संयुक्त कर दूंगा तो मेरे लिये यह अपनी शक्तियों को व्यर्थ फेंकना होगा।

मुझे उपदेश करना है, नहीं तो मैं बचपन से ही इतने शौक़

से यह आकांक्षा क्यों रखता। मुझे उपदेश ज़रूर करना है, नहीं तो मैं अपने माता, पिता, पत्नी, बच्चों, सांसारिक स्थिति (पदवी) और आशापूर्ण उन्नति का त्याग ही क्यों करता। जो कुछ मैं यहां अनुभव कर रहा हूँ, उसे दिव्य अग्नि से परिपूर्ण हो, उत्साह व साहस के साथ, निर्भय होकर, सब प्रकार के विघ्नों और विरोधों का सामना करते हुये मुझे उपदेश करना है। भविष्य के लिये रुपये रखने की आप की सम्मति को मैं धन्यवाद के साथ स्वीकार करता हूँ।

नित्य कसरत की जाती है। स्वास्थ्य अच्छा है। जल वायु बहुत ही उत्तम है। आप के लिये और बाबू साहब के लिये शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!! चाहता हूँ।

राम तीर्थ स्वामी।

—— :-*-: ——

*बृजलाल गोस्वामी, कानूगो रियासत जम्मू

प्रियवर,

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप किसी काम में लग गए हैं! सदैव ईमान्दार और तत्पर रहना। अपना कर्तव्य बहुत श्रद्धा पूर्वक करना। अपने समय का कुछ भाग प्रतिदिन भगवद्गीता और योगवासिष्ठ के अध्ययन करने में देते रहना। कभी असावधानी न करना। ॐ

अपने सदाचरण से अपने आप को उस उच्च कुल के योग्य सिद्ध करना जिस से तुम्हारा सम्बन्ध है।

प्रलोभनों के अधीन मत होना।

हर सुखराय को 'ओ३म् आनन्द कहदेना'।

चाहे क्या ही क्यों न हो, दियानतदारी और सचाई को मत छोड़ना। राम।

* स्वामी राम का भतीजा।

विशेष रियायत

अंग्रेजी भाषा में श्री स्वामी रामतीर्थ की संक्षिप्त जीवनी जो उन के एक (गणित विद्या पर) व्याख्यान के साथ सजिल्द पुस्ताकार में प्रकाशित है और ।।।) दाम पर बिक रही है, उसे विद्यार्थी लोग और श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली के स्थायी ग्राहक केवल ।।) दाम पर ले सकते हैं। यह विशेष रियायत केवल राम चरित्रामृत के प्रचारार्थ और विद्यार्थी लोगों के विशेष लाभार्थ की गई है।

मैनेजर
श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग
गणेशगंज, लखनऊ

PRINTED BY K. C. BANERJEE AT THE ANGLO-ORIENTAL PRESS
LUCKNOW